लोक-संस्कृति और साहित्यमाला

आंध्र प्रदेश : लोक संस्कृति और साहित्य

आंध्र प्रदेश
लोक संस्कृति और साहित्य

बी० राम राजू

अनुवाद

डा० मस्त राम कपूर

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली

प्रथम संस्करण 1981 (शक 1903)
द्वितीय आवृत्ति 1989 (शक 1911)

रु० 15.00
Folklore of Andhra Pradesh (Hindi)
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय-सूची

चित्र-सूची

फोटोचित्र—आंध्र प्रदेश संगीत नाटक
अकादमी, हैदराबाद तथा बी० सुब्बरामन
मद्रास के सौजन्य से

आवरण : जिप्सी लड़कियां, विष्णु पंजाबी के सौजन्य से

1

प्रदेश और लोग

किसी भी जाति के जीवन मूल्य उसकी लोक-संस्कृति एवं साहित्य में प्रकट होते हैं। यह विषय बहुत व्यापक है और इसका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अधिकांश लोक-साहित्य भावनामूलक और कल्पनामूलक होता है। यही कारण है कि इसकी अपील सहज और तीव्र होती है।

भारत के ग्रामवासियों की आध्यात्मिकता नैसर्गिक है और प्रतीकवाद, जो शहरी लोगों का विशेषाधिकार नहीं है, ग्रामवासियों के विश्वास और अभिवृत्तियों का अभिन्न अंग है। लोक-साहित्य के अध्ययन से जहां हमें किसी जाति के सांस्कृतिक ताने-बाने को समझने में सहायता मिलती है वहीं मानवीय पक्ष को देखने की प्रेरणा भी मिलती है।

ये भोले-भाले लोग देश के कोने-कोने में फैले हैं। जंगलों में रहने वाले लोग, पर्वतीय क्षेत्रों में बसे पहाड़ी, समुद्र-तटों पर मछुए, नदी की घाटियों के निवासी, मल्लाह और नाविक सभी उस विशाल जन-समूह में आते हैं। ये सब अपनी-अपनी परंपराओं का पालन करते हैं। ये साधारण लोग हैं और अपने में मस्त रहते हैं। सदियों पुराने रस्मों-रिवाज इन्हें पारिवारिक बंधन में बांधते हैं और सर्वशक्तिमान ईश्वर पर इनका अटूट विश्वास है। परम सत्ता पर इनका विश्वास बहुधा किसी वृक्ष, पाषाण, पशु, नदी, पर्वत, जंगल या विचार मात्र के प्रति उनके प्यार में व्यक्त होता है।

कृषि के विकास से पूर्व इन लोगों का मुख्य काम था शिकार करना और भोजन इकट्ठा करना। बाद में ये खेती करने लगे। छोटे-छोटे खेत बनाकर वे हल चलाते और मौसमी फसल के लिए कठिन परिश्रम करते। खेती पर उन्हें पूरा ध्यान देना पड़ता और इसलिए वे फसल बोने-काटने में पूरी तरह व्यस्त रहते। बीच-बीच में फुर्सत और आराम के क्षण आते, जो कठोर शारीरिक परिश्रम का जीवन जीने के लिए अत्यंत आवश्यक थे। यह समय मनोरंजन का और गीत-नृत्य से जीवन का बोझ हल्का

करने का होता था। जब फसल अच्छी होती तो आनन्द एवं उल्लास की भावनाएं गीत और नृत्य में व्यक्त होतीं। सामाजिक और पारिवारिक उत्सव भी गीत-संगीत को जन्म देते। ऐसे ही लोकगीत हैं जो ग्रामवासियों के जीवन को अपनी विविधता और पूर्णता के साथ व्यक्त करते हैं।

अज्ञात नाम लोक-गीत ग्रामवासियों के जीवन और उनके दुख-सुख को व्यक्त करने वाले समृद्ध लघुचित्र हैं। लोक-साहित्य में अभिव्यक्ति प्राचीनता से सराबोर लोक-प्रथाएं और लोक-विश्वास मानव-मन के विकास का चित्र प्रस्तुत करते हैं। ये गीत और नृत्य हमें लोगों में सौंदर्य बोध से परिचित कराते हैं। इन गीतों की विशेषता यह है कि ये किसी एक व्यक्ति के नहीं बल्कि पूरे समाज के गीत होते हैं। गीत के रचनाकार का हमें पता नहीं होता। मौखिक परंपरा ही उन्हें सुरक्षित बनाए रखती है।

भारत इस बात पर गर्व कर सकता है कि उसने आंध्र के सातवाहन वंश के हाला राजा के रूप में लोक साहित्यविद् राजा पैदा हुआ। वह ईसा की प्रथम शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में हुआ और उसने सन् 6 ईसवी से 7 ईसवी तक, केवल एक वर्ष राज्य किया। जन साधारण के प्रति उसका लगाव बहुत गहरा था। इसी लगाव के कारण वह 700 कविताओं का संकलन तैयार कर सका जिन्हें 'गाथा' कहा जाता है।

अर्थ तथा शाब्दिक अभिव्यक्ति में पूर्ण गाथा चार पंक्तियों की एक मुक्तक कविता होती है। प्रत्येक गाथा में जन-जीवन एक या दो पहलुओं का वर्णन होता है। चित्रात्मक और मार्मिक गाथा का लोगों पर अत्यंत सहज प्रभाव होता है।

इन गाथाओं में लोक-साहित्य के विभिन्न पक्षों का विशाल खजाना है। उनकी रचना शैली से ऐसा लगता है कि हाला के समय में इन गाथाओं का विशाल भंडार रहा होगा जिसमें से उन्होंने केवल 700 को चुना। वास्तव में यह लोक-साहित्य के अध्ययन के लिए एक अच्छा ज्ञानकोश है। आधुनिक लोक साहित्यविदों ने न जाने क्यों, हाला की कृति को लोक-साहित्य का महत्वपूर्ण स्रोत नहीं माना है।

आंध्र : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

आंध्र शब्द का प्रयोग प्रदेश, जाति और भाषा तीनों के लिए किया जाता है। एक अन्य नाम तेलुगु प्रचलित है। भारतीय उप-महाद्वीप का यह भू-क्षेत्र 22,000 वर्ग किलोमीटर में फैला है और 12^{o}-41′। तथा 20^{o} देशांतर और 77^{o} तथा 84^{o}-40′ अक्षांश के बीच स्थित है। पूर्व की ओर 600 मील समुद्र तट है। यह क्षेत्र बंगाल की खाड़ी तक फैला है। यह उत्तर की ओर उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश से और दक्षिण की ओर तमिलनाडु से घिरा है। पश्चिम की ओर उत्तर में महाराष्ट्र और दक्षिण की ओर कर्नाटक के क्षेत्र हैं।

आंध्र प्रदेश के तीन मुख्य क्षेत्र हैं। (1) उत्तर सरकार या तटवर्ती आंध्र जिसमें श्री काकुलम्, विशाखापट्टनम्, पूर्व गोदावरी, पश्चिम गोदावरी कृष्णा, गुंतूर, ओंगल और नेल्लोर जिले हैं; 2) रायलसीमा या पृथक जिले जिनमें कर्नूल कुडुप्पा, चित्तूर और अनंतपुर जिले आते हैं; तथा (3) तेलंगाना जिसमें खम्माम, नालगोंडा, वारंगल, करीम नगर, मेदक, निजामाबाद, आदिलाबाद, महबूबनगर और हैदराबाद जिले आते हैं। आंध्र प्रदेश का कुल क्षेत्रफल 276, 754 वर्ग किलोमीटर है और कुल जनसंख्या 43, 502, 708 है। जनसंख्या तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत के राज्यों में आंध्र प्रदेश का स्थान पांचवा है।

यह क्षेत्र उत्तर से दक्षिण तक पहाड़ियों से घिरा है। पहाड़ियां प्रदेश के मध्य भाग में बिखरी हुई सी फैली हैं जिससे प्रदेश दो भागों में बंट जाता है—पश्चिमी भाग और पूर्वी भाग या तटीय आँध्र। ये पहाड़ियां आँध्र के जन-जीवन और इतिहास की अखंड भौगोलिक इकाइयां हैं। उत्तर में सिंहचलम् और अन्नवरम्, मध्य में श्रीशैलम् और दक्षिण में तिरुमलई तिरुपति पहाड़ियां हैं। इन पहाड़ियों का ऐतिहासिक और पौराणिक महत्त्व आगे अध्ययन के दौरान प्रकट हो जाएगा। इन पहाड़ी इलाकों में रहने वाली कोया, चेंचु और सवर आदि जन जातियां ग्रामीण आबादी का मुख्य भाग हैं। गोदावरी और कृष्णा इस प्रदेश की दो प्रसिद्ध नदियां हैं जो पश्चिमी घाट से निकल कर पूर्व की तरफ बहती हैं और बंगाल की खाड़ी में जाकर मिलती हैं। इन दो नदियों के अतिरिक्त तुंगभद्रा, पेन्ना और कई अन्य छोटी-छोटी नदियां हैं जो इस प्रदेश के इतिहास से किसी न किसी प्रकार से जुड़ी हुई हैं।

आंध्र प्रदेश की जातियों का इतिहास बहुत पुराना है। वेदों-पुराणों में तथा बौद्ध और यूनानी साहित्य में आंध्र के लोगों का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है। ऐत्तरेय उपनिषद में आँध्रों का वर्णन विंध्य के दक्षिण-पूर्व में रहने वाली पुंड्र, पुलिन्द, सवर और मितिब जातियों के साथ-साथ किया गया है। इतिहास में इस बात का उल्लेख है कि इस क्षेत्र में आँध्र प्रमुख रूप से निवास करते थे। फिर धीरे-धीरे वे दक्षिण की ओर चले गए और महानदी की सहायक नदी तेलीवाहा की घाटी में बस गए। बौद्ध साहित्य में आंध्रों के विषय में यह सब से प्राचीन उल्लेख है बाद के ग्रंथ 'सुत्तनिपात' में इस क्षेत्र को गोदावरी का तटक्षेत्र 'अंधकरट्ब' बताया गया है। इसके बाद पुराणों में आंध्रों का विशेष रूप से ज़िक्र आता है जिन्हें दक्षिण पथ का निवासी कहा गया है और जहां चार सौ साल तक राज्य करने वाले तीस राजाओं की वंशावली का उल्लेख भी मिलता है। मैगस्थनीज ने अपनी पुस्तक इंडिका में लिखा है कि शक्तिशाली आंध्र राजा दक्कन के दक्षिण-पूर्वी भाग में शासन करते थे। उसके विवरणों से पता चलता है कि ये राजा कितने शक्तिशाली थे। उनकी सेना में, 1,00,000 प्यादे, 20,000

घुड़सवार और 1,000 हाथी थे। वे 30 किलों के स्वामी थे और उनके राज्य में असंख्य गांव आते थे।

आंध्रों का इतिहास सातवाहन राजवंश के उत्थान के साथ शुरू होता है। उन्हें आंध्रभृत्य भी कहा गया है। मौर्य साम्राज्य के बाद आंध्र सातवाहन शक्तिशाली शासकों के रूप में उभर आये और उनका राज्य कांची तक फैल गया, जहां उनका प्रतिनिधि (वाइसराय) राज्य करता था। शुरू में इस वंश ने दक्कन के पश्चिमी भाग को अपनी राजधानी बनाया किन्तु बाद में राजनैतिक कारणों से वे गोदावरी के मुहाने तक आ गये। दक्कन में पेन्नार नदी के उत्तर का क्षेत्र उनके अधिकार में आ गया। धीरे-धीरे वे दक्षिणपंथ के स्वामी बन गये। अंतिम सातवाहन राजा के प्रतिनिधि ने अपनी लड़की का विवाह पल्लव वंश के स्थापक राजा वीरकुर्च वर्मा से किया। वीरकुर्च वर्मा को अपने ससुर से धुर दक्षिण क्षेत्र का राज्य मिला जिसे उसने उत्तर तथा पश्चिम की ओर बढ़ा लिया।

कृष्णा नदी के मुहाने के आस-पास का समुद्रतटीय क्षेत्र इक्ष्वाकु वंश के राजाओं के अधीन था। जब तक सातवाहन राजा शक्तिशाली रहे, इक्ष्वाकु राजा उनका प्रभुत्व स्वीकार करते रहे। पुराणों में इनका उल्लेख पार्वतेय आंध्र और आंध्रभृत्य के नामों से मिलता है। इनका संबंध रामायण के इक्ष्वाकु वंश से जोड़ा जाता है। इनके स्वर्ण-काल के अवशेष आज भी नागार्जुनकोंड (जिसे श्रीपर्वत भी कहा गया है) के आस-पास कृष्णा नदी की घाटियों में मिलते हैं। चौथी शताब्दी के इक्ष्वाकु राजाओं के बाद वृहत्फलायनों ने सागर तट के पूर्वी भागों पर राज्य किया। सालंकायन उनके चचेरे भाई थे जिनका वेंगी क्षेत्र पर अधिकार था।

ईसा की पहली शताब्दी में आनंदगोत्रजों का वर्तमान जिले गुंटूर के क्षेत्र पर अधिकार था। उन्होंने धान्यकटक में पल्लव आक्रमणकारियों को पराजित करके प्रसिद्धि प्राप्त की।

सालंकायनों द्वारा शासित वेंगी क्षेत्र को विष्णुकुंडिन राजाओं ने अपने अधिकार में ले लिया। इस वंश का प्रसिद्ध राजा था माधव वर्मा जो अपने न्याय के लिए विख्यात हुआ।

सातवीं शताब्दी के प्रारंभ में बादामी का चालूक्यवंश सत्ता में आया। सुप्रसिद्ध पुलकेशिन द्वितीय ने अपने भाई कुब्जा विष्णुवर्धन की सहायता से थानेश्वर के हर्षवर्धन की आक्रमणकारी सेनाओं को पराजित किया। पुलकेशिन द्वितीय ने अपने छोटे भाई कुब्जा विष्णुवर्धन की बेहतरीन सैनिक सेवा के बदले उसे कलिंग से नेल्लोर तक के सागरतटीय क्षेत्र का राजा नियुक्त कर दिया। कुब्जा विष्णुवर्धन ने अपने को स्वतंत्र राजा घोषित कर दिया और पूर्वी चालुक्यवंश की स्थापना की। इस वंश ने पांच सौ

साल तक राज किया। उनकी महान राजनैतिक शक्ति को चोलवंश के महान राज-राजा ने भी स्वीकार किया। आंध्र देश के दक्षिणी भागों पर तेलुगु चोलों का शासन था जिनकी राजधानियां पोट्टापी, रेनडु और नेल्लोर में थीं। नेल्लोर के चोल राजाओं की काकतियवंश के गणपति ने उदारता पूर्वक सहायता की। 9वीं शताब्दी के बाद वह शक्तिशाली राजा बना।

सन् 1323 में वारवांगल के अन्तिम काकतिय राजा प्रतापरुद्र देव के पतन के बाद उसके अधीनस्थ सरदार हरिहर तथा बुक्का ने विजय नगर की स्थापना की। उनका एकमात्र उद्देश्य था उत्तर के आक्रमणकारियों को रोकना। तटवर्ती आँध्र पर रेड्डी वंश के राजाओं का शासन था जिनकी राजधानियां थीं अड्ंकी, कांडाविडु, और राजमहेन्द्रवरम। भीतर तेलंगाना में स्थित राजकोंडा और देवरकोंडा में वेलामा राजाओं का लगभग एक शताब्दी तक शासन रहा। राक्षसतंगड़ी में विजय नगर साम्राज्य के पतन के बाद सारा तेलुगु देश धीरे-धीरे गोलकुंडा की कुतुबशाही और बाद में हैदराबाद के निज़ाम के अधिकार में आ गया।

इंगलैंड और फ्रांस के साहसी व्यापारियों के माध्यम से जब पश्चिमी देशों के साथ समुद्री-व्यापार शुरू हुआ तो इस क्षेत्र के इतिहास में नये युग का सूत्रपात हुआ। विदेशी लोगों ने स्थानीय सरदारों की राजनीति में हस्तक्षेप करना शुरू किया। स्थानीय लोगों ने जब उनसे सहायता माँगी तो उन्होंने उन्हें सैनिक सहायता देकर उन क्षेत्रों को आपस में बांट लिया। हैदराबाद के निज़ाम ने गुंटूर, कृष्णा, गोदावरी और विज़ाग के जिले जिन्हें सरकार क्षेत्र कहा जाता है, अंग्रेजों को दे दिए और काकीनाडा के पास यनाम नामक गांव फ्रांसीसियों के पास रहने दिया। पश्चिमी आँध्र के बेल्लारी, अनंतपुर, कुर्नूल, कुड्डुप्पा और चित्तूर जिले निज़ाम ने अंग्रेजों को दे दिए जिन्होंने तब तक भारत में ब्रिटिश उपनिवेश स्थापित कर लिए थे।

स्वाधीनता के बाद अनेक सदस्य राज्यों को अलग इकाइयों के रूप में मान्यता मिली और उन्हें वह स्वायत्तता भी मिली जो सरकार के संघीय सिद्धांतों के अनुरूप थी। जिन देशी रियासतों को अंग्रेजों ने स्वाधीनता दे दी थी उन्हें भारत संघ में शामिल हो जाने के लिए कहा गया। 1957 में राज्यों के पुनर्गठन के समय तेलुगु भाषी क्षेत्र को, जिसमें सरकार जिले, समर्पित जिले, नेल्लोर और तेलंगाना आते हैं, आँध्र राज्य घोषित कर दिया गया। एक ही भाषा तेलुगु के आधार पर बने इस राज्य ने तब से राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति की है।

आँध्र प्रदेश के लोक साहित्य के अध्ययन के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना जरूरी है। प्राचीन सातवाहन राजा बहुत विस्तृत क्षेत्र पर शासन करते थे। अधिकांश लोग कृषि पर निर्भर थे। धान, दालें और कपास मुख्य कृषि-उत्पाद थे।

लोगों को आजीविका के लिए कठिन श्रम करना पड़ता था और उनमें जीवन की उमंग भी थी। उनकी अपनी सौंदर्यवृत्तियां थीं। उनके अपने सामाजिक कार्यकलाप थे। वे आर्य देवी-देवताओं की पूजा करते थे और ओजस्वी तथा समृद्ध जीवन बिताते थे। हाला के सात सौ कविताओं के संकलन से, जिसमें संभवतया कुछ उसकी अपनी कविताएं भी थीं, जन-जीवन की ऐसी ही साफ तस्वीर उभरती है। इन कविताओं में आधुनिक तेलुगु भाषी लोगों के पूर्वजों के जीवन का सम्पूर्ण वर्णन है। किन्तु लोक-साहित्य के अर्वाचीन ग्रंथों में हाला के इस संकलन की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। हाला की 'गाथा सप्तशती' एक अत्यंत व्यापक साहित्यिक अभिलेख है जिसमें प्रथम शताब्दी और उससे पहले के जन-जीवन के इतिहास को रेखांकित किया गया है। इस ग्रंथ की चर्चा आगे चलकर फिर की जायेगी।

लोकसाहित्य का विषय हुआ करते थे—राजाओं के युद्ध, बड़े-बड़े योद्धाओं की वीरता, संहारक झगड़ों के कारण, राज-घरानों के विवाह-संबंध और महान पुरुषों के जीवन चरित्र, वीरता, युद्ध-कौशल, किसी अच्छे उद्देश्य के लिए आत्म-बलिदान, सम्मान की रक्षा के लिए उठाये गए जोखिम और मानव-कल्याण के कार्य आदि लोक गाथाओं और लोकगीतों के भाव होते थे। इनमें अत्याधिक माधुर्य तथा साहित्यिक गरिमा होती थी और चारण या गायक कवि मधुर धुनों में इन्हें गाकर स्मृतियों को ताजा बनाये रखते थे। राजाओं का शासन, अक्सर लड़े जाने वाले युद्ध और साहित्य एवं कलाओं को राज्य का संरक्षण, इनसे प्रेरित होकर ग्रामवासी भी सार्वजनिक मनोरंजन के कार्यक्रमों में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। बहुत संभव है कि ये कार्यक्रम जन साधारण की साहित्यिक रुचियों का पोषण करते रहे हों।

इन साहित्यिक गीतों और गाथाओं के अलावा, लोग विभिन्न अवसरों के लिए भी गीत बनाने में दक्ष थे, जिनसे घरों या खेतों में काम के दौरान उनका मनोरंजन हो सके। इनमें लोरियां, खेलगीत, उत्सव गीत, ब्याह-शादी के गीत, भक्तिगीत, दार्शनिक भावों के गीत, प्रेम संबंधों के गीत और शोक गीत शामिल हैं।

जातीय विवरण

बहुत खोज बीन के बाद नृतत्वशास्त्रियों ने आँध्र के लोगों के जो शारीरिक लक्षण बताये हैं वे इस प्रकार हैं—लम्बा कद, गोल सिर, चौड़ा चेहरा, चापनुमा लंबा मस्तक, आगे को निकली हुई मोटी नाक, सीधे बाल और पीली त्वचा। वैसे तो ये सामान्य शारीरिक लक्षण हैं परन्तु विज़ाग जिले के कापुस ब्राह्मण-जातियों में कुछ ऐसी विशेषताएं पायी जाती हैं जो मुख्य काकेशियन उप शाखा से संबंद्ध भूमध्यसागरी उप-जातियों से

काफी मिलती-जुलती हैं। जैसे कि छोटा या मध्यम कद, लंबा या उठा हुआ मध्यम आकार का सिर, सामान्य भौंहें, छोटा मगर चौड़ा चेहरा, मध्यम आकार की लेकिन उठी हुई नाक, सीधे बाल, लहराती वेणियां और सामान्यतया गेहुंआं रंग।

आंध्र प्रदेश के दूसरे निवासियों को हम दो वर्गों में बांट सकते हैं। पहला दक्कन के पठार के वनों और पर्वतीय क्षेत्रों में रहता है। दूसरा कृष्णा और गोदावरी नदियों के दोआब वाले विस्तृत क्षेत्रों में रहता है। वनवासियों का रूप-आकार आस्ट्रेलियाई उप-जाति के लोगों से मिलता-जुलता है। श्रीशैलम् पहाड़ियों के चेंचु लोग इस वर्ग में आते हैं। उनका कद छोटा, लंबा सिर, स्पष्ट उभरी भौंहें, बाहर को निकला हुआ मुंह और नाक चौड़ी होती है। त्वचा का रंग सामान्य तौर पर गेहुंआं और बाल काले तथा घुंघरदार होते हैं। दक्षिण भारत के अधिकांश कबीलों का रूप-रंग इसी प्रकार का है यद्यपि पूर्वी सागर तट पर रहने वाली कुछ जातियों, जैसे कि यनादी और पेरुकुल में मंगोल विशेषताएं नहीं होतीं। भूमध्यसागरीय उप-नीति में भी इनकी समानताएं देखी जा सकती हैं।

भद्राचलम् और सिंहाचलम् पर्वतीय क्षेत्रों में बसने वाले गदब, सबर और कोया जातियों का रूप-आकार मंगोल और आस्ट्रेलियाई जातियों का मिला-जुला रूप है। मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों में भूमध्यसागरीय विशेषताएं दिखाई देती हैं। अन्य नृतत्वशास्त्रीय वर्गीकरणों की तरह यह वर्गीकरण भी न तो वैज्ञानिक ही है और न यथार्थ पर आधारित है। अतः सुविदित कारणों से इन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। फिर भी यह कहा जा सकता है कि यद्यपि आँध्र के लोगों का संबंध मुख्य रूप से भूमध्यसागरीय उपजातियों से है लेकिन सदियों के परस्पर मेल-जोल के फलस्वरूप उनकी विलक्षणताएं लगभग समाप्त हो गयी हैं।

प्रागैतिहासिक काल से ही तेलुगु प्रदेश में वन और पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले लोग तथा अन्य कबीले शामिल किये जाते हैं। सागरतटीय क्षेत्र में कुछ और कबीले भी रहते थे। इस समय आँध्र प्रदेश में 14 लाख जन-जातियों के लोग और 50 लाख खानाबदोश तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लोग हैं। ये लोग बंगाल की खाड़ी के तटीय क्षेत्र और पहाड़ी पट्टी में श्री काकुलम जिले की भद्रागिरि एजेंसी से लेकर खम्मम और गोदावरी जिलों की भद्राचलम एजेंसी तक फैले हैं। यह जनजाति क्षेत्र बस्तर, दंडकारण्य और विदर्भ के जन-जाति क्षेत्रों से मिला हुआ है। आँध्र प्रदेश के आठ जिलों में 33 जनजातियों के लोग रहते हैं। इनमें महत्त्वपूर्ण हैं खोंड, कोलमी, नायकपोड, कोया, कोंडाडोर, बाल्मीकि, भगत, सबर, जटायु, गादब और चेंचु।

इन पर आर्य सभ्यता का प्रभाव पूरी तरह से नहीं पड़ा है। लेकिन हिन्दू धर्म की बहुत सी बातों को इन्होने अपना लिया है। इसके बावजूद इन जातियों में अपने प्राकृतिक देवी-

देवताओं की पूजा जारी रही है और वे अपने पुराने रस्मों-रिवाजों के अनुसार उत्सव मनाते हैं। उनकी भाषाएं सामान्यतया मौखिक हैं। उनकी कोई लिपि नहीं है। भाषा के लिए लिपि जरूरी होती है इस बात से वे सहमत नहीं हैं। रूढ़ियां इन पर हावी हैं। रूढ़िगत नियमों का पालन बड़ी कड़ाई के साथ किया जाता है और उनका उलंघन करने वालों को खूब लताड़ा जाता है। उनके सामाजिक जीवन की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वे अपने सरदार या मुखिया की आज्ञा पर चलते हैं और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में मुखिया को बहुत आदर-सम्मान देते हैं। मुखिया को कबीले से संबंधित सभी नियमों, पुराने रस्म-रिवाजों और पौराणिक कथाओं का ज्ञान होता है और वे कबीलों के उत्सवों एवं प्रीति भोजों में बिना किसी संकोच के सम्मिलित होते हैं। ये नाचते-गाते हैं। ये लोग सभ्य लोगों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट होते हैं शायद इसीलिए कि अपने संपूर्ण सामुदायिक जीवन में सहजता और समर्पण के भाव से लेते हैं। सागरतट पर रहने वाले यानादी, श्री शैलम पर्वतीय क्षेत्र के चेंचु, गोदावरी और श्री काकुलम पहाड़ी क्षेत्र के सबर और कोया और आदिलाबाद वनों में रहने वाले खोंड लोगों में प्राचीन रिवाजों का पालन विशेष रूप से देखा जा सकता है। इनके विश्वास बहुत सीधे-सादे होते हैं और उन्हें ये साधारण शब्दों में अभिव्यक्त करना चाहते है। परिवर्तन उन्हें पसंद नहीं है और नवीनता लाने वालों से ये लोग सशंकित रहते है। कुल मिलाकर ये ईमानदार होते हैं और अपने आचरण में ढील नहीं होने देते।

आँध्र प्रदेश में कुछ खानाबदोश कबीले ऐसे हैं जिन्हें स्थायी जीवन और व्यवसाय के लाभ समझ कर बसाना अभी बाकी है। पिकुक्कागुंतुलु, बालसंत, शारदा कंदुर, वीर, मुष्टिवारु, बावानिलु, बीरन्नलवारु, गोलसुद्दुलु, दासरुलु, जंगमुलु, कोम्मुवारू आदि खानाबदोश तेलुगु कबीलों का मुख्य धंधा गाथा-गायन है। ये लोग प्रायः भीख मांग कर गुजारा करते है। किन्तु ये लोग कुछ विशेष जातियों की वंशावली के अनुरक्षण तथा वंश-कीर्ति के गान का काम भी करते है। उनमें कुछ घूम फिर कर व्यापार करते हैं और स्त्रियाँ खिलौने, टोकरियां, चटाइयां, मालाएं और कास्मेटिक्स आदि बनाने जैसे कुटीर उद्योगों में लगी हैं। मौसम के अनुसार ये लोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमते रहते हैं और उनका यही परंपरा बन गया है। स्थिर जीवन पर निर्भर निश्चित व्यवसाय के लाभों को मानने के लिए उन्हें तैयार करना बहुत मुश्किल काम है! फिर भी इन खानाबदोश कबीलों के मनोरंजन आदि के अपने तरीके हैं जिनके का ग उनके जीवन की कठोरता, कम होती जाती है और वे संतुष्ट रहते हैं। दुखों-तकलीफों को वे जीवन का अंग मानते हैं किन्तु वे यह भी जानते हैं कि जीवन की चिंताओं से किस प्रकार सीधे-सरल ढंग से त्राण पाया जा सकता है।

गैर-तेलुगु खानाबदोश कबीलों में लम्बाड़ी जिन्हें सुगाली भी कहा जाता है, बहुत

प्रसिद्ध हैं। मूलतः वे राजस्थान के हैं और जो घुमक्कड़ जीवन को अपना कर दक्षिण की ओर आये हैं। इस प्रकार के कुछ दल सारे आंध्र प्रदेश में हैं, किन्तु कालांतर में वे एक स्थान पर स्थिर जीवन बिताने के अभ्यस्त हो गये और खेती को अपना लिया है। कुछ दल देहाती इलाकों में रहते हैं। वे घूम-घूम कर अपनी वस्तुओं को बेचते हैं। लंबाड़ियों के अतिरिक्त महाराष्ट्र मूल के लड़ाकुओं के कुछ दल तेलंगाना भी बस गये हैं। इन्हें आरे कहा जाता है। संभवतः यह शब्द आर्य का बिगड़ा हुआ रूप है। इनकी बोली में मराठी और तेलुगु का मिश्रण है। 12वीं शताब्दी के एक शैव तेलुगु कवि पालकुरीकि सोमनाथ ने भगवान शिव की स्तुति में आरे बोली में एक कविता लिखी थी। इससे जाहिर होता है कि आरे लोग आँध्र प्रदेश में बहुत लंबे समय से रहते आ रहे हैं। अब वे खेती-बाड़ी का धंधा करते हैं। सगोत्र-विवाह वाले कबीले के रूप में वे तेलुगु प्रदेश में फल-फूल रहे हैं। उनकी भाषा केवल मौखिक है। उनका रहन-सहन और रस्मो-रिवाज उनके अपने प्रदेश के अन्य लोगों से भिन्न है।

ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण सांस्कृतिक जटिलताएं पैदा हुई हैं। विभिन्न धर्मों के कई विदेशी भी आँध्र प्रदेश में आये और इनमें से कुछ ने आगजनी और तलवार के जोर पर सांस्कृतिक विजय हासिल की। अन्य आध्यात्मिक विकास की आड़ लेकर आये। इन विदेशी तत्वों ने लोगों के जीवन के सातत्य और शांति को भंग किया और संस्कृति और परंपरा को भी क्षति पहुंचाई। विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं के कारण, लोगों के जीवन में निश्चय ही बाधा उपस्थित हुई है।

यद्यपि इन ग्रामीण लोगों को आकृष्ट करना तथा आर्थिक एवं सामाजिक साँस्कृतिक योजनाओं के अंतर्गत उन्हें लाना बहुत जरूरी है किन्तु अच्छा यही होगा कि हम उनकी सांस्कृतिक और जातिगत अस्मिता को बनाए रख कर ही निम्नतम स्तर पर परिवर्तन लायें। तथापि वर्तमान समय की उत्साहवर्धक बात यह है कि साधारण लोगों की तरफ ध्यान दिया जा रहा है। जनजाति कल्याण विभाग और समाज कल्याण विभाग अपनी अनेक संस्थाओं के माध्यम से जनजातियों और पिछड़े वर्गों में शैक्षिक तथा आर्थिक योजनाओं द्वारा सुधार लाने की कोशिश कर रहे हैं। इन सीधे-सादे लोगों के रहन-सहन में सुधार लाने के लिए कई योजनाएं चल रही हैं जैसे, नि शुल्क शिक्षा, छात्रावासों की सुविधा, कुटीर उद्योग, आवास समितियां, कृषि संबंधी सुविधाएं, बैंक-ऋण, शहद, जड़ी बूटियों आदि की बिक्री के लिए सहकारी निगम आदि।

2

मिथक और पुराण

सभी प्राचीन देशों का अपना विशाल मिथक भंडार होता है। भारत में ये मिथक कथाएं अनगिनत हैं। वैदिक साहित्य से लेकर अंतिम पुराण तक इन मिथक कथाओं के विशाल भंडार हैं किन्तु इन्हें भली प्रकार समझने के लिए एक विशिष्ट दृष्टिकोण को अपनाना जरूरी है। रूढ़िगत दृष्टिकोण जहां संशय और उदासीनता से उबरने में सहायक होता है वहीं आधुनिक तर्क प्रधान दृष्टिकोण मे सहनशीलता का पुट देना आवश्यक हो जाता है। हम इस मूल धारणा को लेकर चलते हैं कि लोक-साहित्य में सीधे-सरल सत्य, ऊंचे आदर्श, उत्कृष्ट बिम्ब-विधान, सरल अभिव्यक्ति, सुकुमार विचार और प्रभूत सौंदर्य तत्व का समावेश होता है। साधारण लोग दरबारी विनम्रता, शब्दाडंबर और जीवन पद्धति में तेजी से परिवर्तन पसंद नहीं करते हैं। सीमित इच्छाएं, सादा जीवन शुद्ध प्रसन्नता, निश्छल संबंध, सच्चे विश्वास और उदात्त आदर्श इन साधारण लोगों के जीवन की विशेताएं होती हैं। आधुनिक मनुष्य को इन लोगों में शर्मीलापन, रूढ़िप्रियता, असंप्रेषणीय स्वभाव और अनजान तथा अपरिचित का भय दिखाई देता है।

बौद्धिक चिंतन की जटिलताओं से अछूते रहने के कारण ग्रामवासी मूर्त वस्तुओं में शांति ढूंढते हैं। इन्हें वे अमूर्त ईश्वर की शक्तियों से विभूषित समझते हैं। सूर्य उनके लिये सर्वशक्तिमान और शक्तिदाता है। ईश्वर की तरह ही वह अत्यंत प्रखर होता है और सबके कार्यों पर नज़र रखता है। वह बिना भेद-भाव के सभी पर अपनी किरणें बिखेरता है। वह आकाश-पथ पर सुबह से शाम तक अपने रथ पर चढ़ कर सवारी करता है। गाथा सप्तशती (1.34) में सूर्य के रथ पर लहराते ध्वज का उल्लेख मिलता है, जो अपना प्रकाश नीचे बिखेरता है। लोग इसी तरह की अनेक परिकल्पनाओं पर सहज भाव से विश्वास करते हैं। अपने मुखिया का संबंध वे सूर्यवंश से जोड़ते हैं। वे उसे उस ईश्वर का अवतार मानते हैं जो उन्हें जीवन में सुख देने के लिए आया है। इसके विपरीत जब

सूर्य की झुलसती गर्मी असह्य हो जाती है और वर्षा के अभाव में भयानक सूखे के लक्षण दिखाई देने लगते हैं तो वे इसे अपने पापों का दंड और ईश्वर के क्रोध का फल मानते हैं। उसी तरह वे नव जीवनदायिनी और धरती की रक्षक वर्षा की भी पूजा करते हैं। वे वर्षा के महाभूतों की प्रार्थना करते हैं। टोलियों में इकट्ठे होकर वे वरुण और इंद्र की प्रशस्तियां गाते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि घने बादलों से आसमान को ढक जायें और धरती पर भारी बौछार पड़े। लगातार पीछा करते भारी दुखों से संतप्त इन लोगों के पास प्रार्थना का ही एकमात्र सहारा होता है। वर्षा के आह्वान के लिए बहुत से गीत हैं बादलों के बंधन से वर्षा को मुक्त कराने के लिए साधारण गीतों से लेकर अत्यंत मधुर गीत हैं। इन्हीं का सहारा वे वर्षा के देवता को प्रसन्न करने के लिए लेते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की एक प्राकृतिक घटना है मेंढकों का टर्राना जो वर्षा के आगमन का सूचक माना जाता है। छोटे-बड़े सभी इस आवाज की नकल करके प्राकृतिक क्रिया को तेज करने और मानसून को जल्दी से लाने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें विश्वास है कि उनकी प्रार्थना सुनी जायेगी और देवता वर्षा को भेजकर उन्हें आशीर्वाद देंगे। वर्षा के आह्वान के लिए ऋग्वेद के एक मंत्र को गाया जाता है जिसमें मेंढकों के टर्राने का उल्लेख है। कभी-कभी सूखी और फटी हुई धरती पर बर्तन से पानी गिराया जाता है जो इसी प्रयोजन के लिए एक प्रतीकात्मक कार्य है। कवितायें गायी जाती हैं। धार्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं। समाज के सामूहिक प्रयास एक ही लक्ष्य पर केंद्रित हो जाते हैं और वह लक्ष्य होता है आकाश से वर्षा की कुछ बूंदों को मना कर लाना।

यह सर्वविदित है कि वर्षा का आधिक्य भी अनेक समस्याओं का कारण बनता है। भले ही इससे तालाब भर जाते हैं और विस्तृत खेतों में अद्भुत हरियाली छा जाती है। किन्तु धरती जल-मग्न भी हो सकती है, नदियों में बाढ़ आ सकती है और बहुत सा नुकसान हो सकता है। तब लोग बड़ी उत्सुकता और उत्साह के साथ वर्षा को बंद करने के लिए प्रार्थना करने लगते है। उसके लिए धार्मिक अनुष्ठान शुरू किए जाते हैं। गीत और प्रार्थनाओं की धूम मचती है किन्तु अबकी बार उद्देश्य बिल्कुल भिन्न होता है। अपनी इच्छाओं और आशाओं के विषय में स्वयं संयत न होते हुए भी वे देवताओं और महाभूतों से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने आशीर्वाद को कुछ संयत करें। मनुष्य की ईश्वर से प्रार्थना का सदा यही रूप रहा है।

वर्षा की सर्वाधिक लोकप्रिय कामना की अभिव्यक्ति "दादुर गीत" (कप्पातलिल पाट) में होती है जिसे संगीत में ढाला गया है और जिसके साथ कुछ ऐसी धार्मिक क्रियाएं रहती हैं जो विभिन्न स्थानों और समुदायों में भिन्न-भिन्न होती हैं। एक गीत जिसका पूरा महत्त्व सुनने पर ही प्रकट होता है, इस प्रकार है : —

मेंढकी मां, मेंढकी मां, हमें एक बाल्टी पानी लेने दे।
"मच्छर मां, मच्छर मां, हमें पानी दे कि हमारे आंगन भर जाएं"

इस अवसर पर जो अनुष्ठान किया जाता है उसमें छोटे बच्चे गांव के बीच टोली बना कर निकलते हैं। वे एक बड़े मेंढक को पकड़ कर उसे मूसल के बीच बांधते हैं। मूसल के दोनों किनारों को कंधा देकर बच्चों का जुलूस बांध खूब शोर करते हुए चलता है। यह जुलूस हर घर के पास रुकता है। वहां मेंढक पर और टोली के सदस्यों पर पानी डाला जाता है। जब उन पर पानी डाला जाता है तो वे बादलों के गरजने जैसा कोलाहल करते हैं। प्रत्येक घर से बच्चों को दूध—चावल मिलता है। सारे गांव से दूध-चावल इकट्ठा करने के बाद टोली किसी पहाड़ी के पास या गांव की किसी ऊंची जगह पर इकट्ठा होती हैं। गांव के लोग भी वहां पहुंच जाते हैं और खीर (वरद पासम) पकायी जाती है। जब खीर बन जाती है तो उसे पहाड़ी से नीचे बहा दिया जाता और इस तरह समारोह समाप्त हो जाता है। मेंढक को छोड़ दिया जाता है। परम्परा ऐसी रही है कि यह अनुष्ठान कभी बेकार नहीं गया।

साहित्यिक पाठ में महाभारत का चौथा सर्ग "विराट पर्व" एक निश्चित समय पर लोगों को तेलुगु में पढ़कर सुनाया जाता है। पाठक और श्रोता उसके लिए गांव के मंदिर में या मुखिया के घर पर अथवा गांव के किसी भी प्रभावशाली व्यक्ति के घर पर एकत्र होते हैं। पाठ समाप्त होने पर वर्षा के वैदिक देवता वरुण को प्रसन्न करने के लिए धार्मिक क्रियाए की जाती है।

वर्षा के साथ ही खेती का काम पूरे वेग से शुरु हो जाता है। लोग नदी देवी का आह्वन करके खेतों में हल चलाने लगते हैं। पिता-पुत्र, मालिक-नौकर सब मिलकर काम करने के लिए मैत्री की भावना से खेतों में जाते हैं। तेलुगु में "एकवाक" गीत कृषक समाज के बीच इस मैत्री-भाव को व्यक्त करता है।

हल जोतने का मौसम आ गया, ओ हो, जोतने का मौसम
नदी-नालों में उफान आया है
काले बादलों का नृत्य होने लगा
काले बादल पहाड़ी की चोटियों से अठखेलियां करने लगे
पानी के नीचे रेत के ढेर सिसकारने लगे
कोयल गाती हुई भाग रही है
मोर नाचते-नाचते थक गया है

मेरे पिता मुस्करा रहे हैं, मेरे पिता खुश हैं
वे नाश्ता करके तैयार हो गए हैं।

हल जोतने का मौसम आ गया.........
आसमान में बादल छाये हैं
रह रह कर बिजली कौंधती है
गर्जन होती है फिर चुप हो जाती है
किसानों में हलचल मची है
किसान खेत जोतने चल पड़े हैं
उन्होंने टोकरे में बीज भरे हैं
बीज उन्होंने भंडार से लिए हैं
वे ढेर सारे बीज बोते हैं बीज लेकर उन्हें अच्छे से बोते हैं
यह मृगशिरा की वर्षा है
मृगशिरा में घनी वर्षा होगी
नये बैलों की जोड़ी तैयार करो
जवान बैलों की जोड़ी तैयार करो
ओ छोकरे, जवान बैलों को तैयार करो
नये हल को तैयार करो
खेत जोतें ओ बापू, आओ हम इसे अच्छी तरह से जोतें
एक दाना बढ़ कर एक करोड़ देगा।

हल जोतने का मौसम आ गया
ओह, नदी मां क्या मांगती है'?
वह लाल फूलों का हार
और सफेद बादलों वाली धूप मांगती है।
हम नदी मां का स्वागत कैसे करें ?
हम झाड़ी के पास खड़े होकर प्रार्थना करें।
नारियल तोड़ो और उसे पानी से भीगे नरम चने दो
हवा में स्वागत गीतों की मिठास भर दो
मां के आगे सिर झुकाओ

पुरुष, स्त्रियां सब
नदी माता से हम क्या वरदान मांगें ?
हम असीम धन-दौलत का वर मांगें
यह धरती दूध और शहद से भर जाये
हल जोतने का मौसम आ गया
ओह, जोतने का मौसम
नदी-नालों में उफान आया है ।

इसी से जुड़ा हुआ है जल प्रलय का आगमन । यह एक नियत काल-चक्र की घटना होती है और ऐसा माना जाता है कि यह युग की समाप्ति पर घटती है । अब तक कई बार सहस्त्रवर्षीय जल-प्रलय आ चुकी है और प्रयेत्क देश के पौराणिक अख्यानों में इन घटनाओं का उल्लेख मिलता है । बाइबिल और भारतीय पुराणों में जल-प्रलय के आगमन उसके मार्ग और परिणामों का वर्णन पूरे-पूरे अध्यायों में किया गया है । लोकगीतों में इन प्राचीनकाल में घटी प्रलयंकारी घटनाओं का वर्णन होता है । जल-प्रलय में सब कुछ नष्ट हो जाता है । धरती पानी में डूब जाती है । हर जगह पानी ही पानी दिखाई देता है । पुराणों के अनुसार विश्वास किया जाता है ! कि इस तरह पृथ्वी को नव-निर्माण के लिए तैयार किया जाता है अथवा यह निर्माण-चक्र की पुनरावृत्ति होती है । जल-प्रलय एक ऐसी महान घटना है जो विश्वव्यापी विनाश को जन्म देती है । पीढ़ियों तक इसका जिक्र किया जाता है और भय के कंपन के साथ इसे याद किया जाता है । किन्तु भारतीय दर्शन इसे ऐसी घटना मानता है जिसका बार-बार होना अनिवार्य है ।

चंद्रमा

भारतीय पुराण में चंद्रमा को हमेशा देवता माना गया है जिसका कभी-कभी मन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है । बच्चों के लिए यह चंदा मामा है जो उन्हें प्यारी मां द्वारा दिये गये भोजन को खाने के लिए उकसाता है । विवाहित जोड़ों के लिए वह प्यार का साक्षी होता है और उनके सुख का उद्दीपन करता है । विरही व्यक्तियों के लिए वह बैरी होता है और ज्वार-भाटे का मुख्य कारण भी चांद ही होता है । किसान बारह पूर्ण चंद्रमा (एरुवाक पुन्नम) गिन कर पूरे साल का अनुमान लगाता है । पूर्णमासी के दिनों पर मनाए जाने वाले क्षेत्रीय उत्सव सामान्यतया फसल-कटाई के समय आते हैं । चांद का घटना-बढ़ना सब की कल्पना को छू लेता है । लोगों ने चंद्रमा के विषय में अनेक कहानियां गढ़ ली हैं । उसके गोल आकार को आंखों की पुतली बताया गया है और

चांद-सूरज दोनों को परमात्मा की दो आंखें कहा गया है। चांदनी को सभी कवियों ने अपनी कल्पना का विषय बनाया है। विरही प्रेमियों को चांदनी तड़पाती है और उनमें विरह-वेदना भर देती है। विश्व के शेष लोक-साहित्य की तरह भारतीय पुराणों में भी शीतल, रहस्यपूर्ण चंद्रमा का उल्लेख मिलता है जिसकी कई प्रकार से व्याख्या की गयी है। जन-साधारण की कल्पनाओं में कविता की झलक दिखायी देती है और विरही प्रेमियों का रूपक एक आधारभूत कल्पना रही है। अकेले प्रेमी पर निर्दयता दिखाने के लिए चंद्रमा को हमेशा क्षमा किया जाता रहा है। उसके क्षीण होते रूप को विरह-तप्त प्रेमी जोड़ों के अभिशाप का फल बताया जाता है। पूर्ण चंद्रमा, विशेषकर आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर या अक्तूबर-नवंबर) के महीनों में बड़ा भव्य लगता है। उसकी सुंदरता प्रेमी को अपूर्व आनंद देती है जो अपने प्रिय के साथ उसकी तुलना करता है।

निम्नलिखित तेलुगु गीत चंद्रमा से संबंधित लोक गीतों का एक उदाहरण हैं। इसमें एक युवती की वेदना व्यक्त हुई है :—

ओ चंदा, प्यारे चंदा
उसने मुझे प्यार किया
उसने मुझे बहुत चाहा। ओ चंदा प्यारे चंदा
उसने मुझे अपने प्यार से जीत लिया
और मैं उसके प्यार में डूब गयी
सांझ की बेला में
मैंने उसे प्रिय कह कर पुकारा। ओ चंदा, प्यारे चंदा
वह टकटकी लगाकर देखता रहा
कुछ न बोला
एक शब्द भी नहीं
कितना अजीब था वह सब। ओ चंदा प्यारे चंदा
वह मेरे पीछे पागल था
मेरे आस-पास मंडराता था
कल तक यही बात थी। ओ चंदा प्यारे चंदा
उसने बरसाई मुझ पर अपनी मुस्कानें
और बढ़िया उपहार भी
वह मेरे पिघलने की प्रतीक्षा करता रहा, करता रहा
जब तक मुझे उससे प्यार नहीं हुआ। ओ चंदा प्यारे चंदा

उसकी सुंदर मूर्ति मेरे दिल में आ बसी है। ओ चंदा प्यारे चंदा
उसकी कमर में तलवार है
जिसकी मूठ पर पन्ने जड़े हैं
उसकी धार तेज, बहुत तेज है
मैं चाहती हूं वह तलवार मेरे दिल को चीर दे
और तब मुझे शांति मिलेगी। ओ चंदा, प्यारे चंदा

चंद्रमा पूर्ण विकसित होने के बाद क्षीण होने लगता है और अमावस्या के बाद वह कुछ भी नहीं होता है। फिर वह धीरे-धीरे बढ़ने लगता है। इस आकाश-पिंड का यह रहस्य दिमाग को चकरा देने वाला है। वह हमेशा सत्ताईस नक्षत्रों से घिरा रहता है किन्तु वह लाल नक्षत्र (एल्डेबरन) को सब से अधिक चाहता है। उसके उतार-चढ़ाव के सभी अट्ठाईस दिन किसी उत्सव, समारोह, पूजा या खुशी के दिन होते हैं।

भारतीय पुराणों में चंद्रमा पर व्यभिचार का दोष लगाया गया है और इस पाप के दंड स्वरूप ही उसका क्षय होना माना गया है। किन्तु जन्मकुंडली में अन्य ग्रहों के साथ इसकी स्थिति के अनुसार ही प्राणियों के जीवन पर अन्य ग्रहों का प्रभाव माना जाता है। चंद्रमा की इन सब विशेषताओं को लोक साहित्य में कथ्य की आवश्यकता के अनुसार रखा गया है। स्त्री के सुंदर मुख की उपमा पूरे चांद से की जाती है। "गाथा सप्तशती" 7-72 में शृंगार करती सुंदरी के मुख के क्रमिक अनावरण को चंद्रमा की चौदह कलाओं की उपमा दी गई है। चंद्रमा के उदय होने पर कमल मुरझा जाते हैं लेकिन कुमुदनियां चांदनी में प्रसन्न होती है और उनकी पंखुड़ियां खिल उठती हैं। कृष्ण की कथा गोपियों (घुमक्कड़ों की सजातीय वृंदावन की ग्वालिनें) के साथ उनमें आध्यात्मिक प्रेम के इर्द-गिर्द घूमती है। इन गीतों में पूरे चांद के प्रभाव का वर्णन है। चांदनी की अनुपस्थिति वहां अभीष्ट है क्योंकि चंद्रमा के छिप जाने का अर्थ है परमानंद की समाप्ति।

पर्वतों और वनों में रहने वाले लोग चंद्रमा के साथ अनेक रहस्य-कथाएं जोड़ते हैं। गीदड़ चांदनी में रोते हैं और डाकू तथा व्यभिचारी इससे घृणा करते हैं। इसके बावजूद लोक साहित्य के अनेक प्रेम गीतों में टेक के रूप में चंदामामा शब्द आता है।

लोगों ने सूर्य और चंद्रमा की दो भाइयों के रूप में भी कल्पना की है और उनकी प्रशस्ति में गीत गाये हैं। उनके अनुसार सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण नाग के डंक के कारण होता है। नीचे लिखे गीत में ग्रहण का कारण बताया गया है। इस गीत की टेक "ओ राम राम सरन" है :

कुटिया के उत्तर में एक बड़ा बरगद का पेड़ था
उसकी छाया में नाग का वास था
नागिन ने एक कोने को खोद कर उसमें अंडे दिये
जब वह शिकार के लिए बाहर गयी तो
कुछ दुष्ट ग्वालों ने चिड़ियों के घोसलों से उनके अंडे बटोर लिये
मैना के अंडों को दीवार पर मार कर फोड़ डाला
नागिन के अंडे भी फोड़ दिये
नागिन आई तो देखा अंडे चूर चूर हैं
अपने डरावने फन को फैलाए
क्रोध से पागल नागिन ने लड़कों का पीछा किया
सूर्य और चंद्रमा दोनों भाई
मोतियों की चटाई पर चौपड़ खेल रहे थे
शरारती लड़का उनके पीछे जा छिपा था
नागिन ने कहा "ओ चांद ! उस लड़के को नीचे धकेल दो"
"क्या हम इतने दुष्ट हैं कि उसे नीचे धकेल देंगे ?"
सूर्य और चंद्रमा ने एक साथ कहा।
साल में एक बार नाग चंद्रमा को डसता है
साल में एक बार नाग सूर्य को डसता है
यदि जवान ब्याही औरतें इस गीत को गायेंगी
तो इन्हें बहुत से अच्छे पुत्र मिलेंगे
विधवाएं गायेंगी तो अनगिनत लाभ मिलेगा
जो गीत को सुनेंगे उन्हें भी आशीर्वाद मिलेगा ।

तेलुगु लोग ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुओं के साथ अपनत्व जोड़ते हैं—सूर्य, चंद्रमा और तारे। निम्नलिखित गीत में इस भव्य संबंध और संगति का वर्णन हुआ है। गीत की टेक है "ओ चंदा मामा" :

टिमटिमाती तारिका मेरी मां है
प्रिय चंद्रमा हमारे प्रिय पिता हैं
आदि नारायण हमारे बड़े भाई हैं
पूज्य जानकी हमारी भाभी है
दक्षिण दिशा की तारिका हमारी बहन है

स्वर्णिम सूर्य हमारा बहनोई है
सांध्य तारा हमारी चचेरी बहन का पति है
मधुर मुस्कान वाली चमेली हमारी छोटी बहन है।

नदियां

आंध्र का समुद्र तट बहुत लंबा है जो गोदावरी और कृष्णा जैसी बड़ी तथा असंख्य छोटी नदियों की अगाध जलराशि को ग्रहण करता है। हर छोटी-बड़ी नदी के जन्म की एक रोचक कहानी है। नदियां मूर्तिमान देवियां हैं। वे खेतों को सींचती हैं। इनके तट प्रेमियों के मिलन-स्थल होते हैं और सारी कृष्ण लीला काले जल वाली पवित्र यमुना नदी के तट पर घटती है। नदी में यात्रा करने वाले नौचालक मिल कर गीत गाते हैं। नदी के घाट विरही प्रेमी युगलों को निकट लाते हैं। जब नदी में बाढ़ आती है तो लोग फल-फूल, ताड़ी तथा और कई प्रकार की चीजें भेंट चढ़ाते हैं। नदी को प्रसन्न किया जाता है ताकि बाढ़ न आए। बाढ़ वाली नदी ग्रामीण लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करती है। यह सागर को भर देती है। सूर्य इस पानी को सुखा कर वर्षा के रूप में फिर मानव को दे देता है। नदियां सागर की पत्नियां हैं। वे अपने मुहानों पर असीम समुद्रतट का आलिंगन करती हैं।

ग्राम देवता

गांव के लोग असंख्य ग्राम-देवताओं की पूजा करते हैं। ये देवता स्थान, परिवार, रस्मोरिवाज और समय के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रत्येक उत्सव का किसी न किसी देवता के साथ संबंध होता है। प्रत्येक गांव का अधिष्ठाता देवता या देवी होती है। इन देवताओं के चमत्कार और उनकी याद से लोगों का विश्वास दृढ़ होता है। जादू टोने भी इन देवी-देवताओं के साथ संबद्ध होते हैं। देवताओं में विश्वास कुछ वर्जनाओं को भी जन्म देता है। लेकिन हर घर में इनकी पूजा करना अनिवार्य होता है। देवी इच्छा पूरी करने वाली भी होती है जो मंदिरों में मिलने वाले प्रेमियों पर नजर रखती है। बलि ग्रामीन जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलू है। वार्षिक अथवा द्विवार्षिक ग्रामोत्सव "जात्रा" तेलुगु प्रदेश के सामुदायिक जीवन की बड़ी विशेषता है। यह उत्सव बीमारी और सूखे की रक्षा के उद्देश्य से पूरे विश्वास के साथ मनाया जाता है। इस उत्सव के दौरान गांव के लोग साधारणतया दूसरे गांव में नहीं जाते हैं। कुछ नियमों का कठोरता से पालन किया जाता है। इन परंपरागत नियमों को तोड़ने पर सख्त दंड दिया जाता है। नाचने-गाने की रस्में अदा की जाती हैं। इस अनुष्ठान को करने का भार जिन व्यक्तियों पर होता है उन्हें अपने खान-पान और आचार-विचार के प्रति संयमित रहना पड़ता

है। इन सब का वर्णन लोकगीतों में मिलता है। "जात्रा" छुट्टियों का मौसम होता है और सरल हृदय ग्रामीण लोगों के जीवन में एकरूपता कुछ समय के लिए समाप्त हो जाती है।

इन जात्राओं में गंगा तिरुनल्लु (गंगा की यात्रा), पोलेरम्मा, पोचम्मा, ऐल्लम्मा, बालम्मा, मैसम्मा, महाकाली, दुर्गा, अंकालम्मा, नूकालम्मा, मावुलम्मा, सारम्मा, शारदालम्मा, दतेश्वरी, सामालम्मा, गंगाम्मा और अन्य कई देवियों की पूजा तथा अंजीर, नीम, तुलसी आदि पेड़ों की पूजा शामिल है। पोतुराजु लकड़ी के ठेले के रूप में एक आदिवासी देवता है और इसीलिए उसे कोयोडा कहा जाता है। वह वचन पूरा न करने वालों को चाबुक से पीटता है।

निम्नलिखित गीत में वचन पूरा करने को आतुर भक्त की पीड़ा का वर्णन किया गया है :—

ओ मेरे देवता कोयोडा, कोयोडा
मेरे कोयोडा कहने पर क्रोध मत करो
मुझे चाबुक से मत मारो, मुझे मत पीटो
यह निर्दयता है, हृदयहीनता है, ओ, कोयोडा।
मैंने लाल आसमान को देखा
और देखा कि जंगल में आग लगी है
चारों ओर नाश ही नाश है
मेरा दिल बैठ गया
और मुझे तुम्हारी याद आयी ओ मेरे रक्षक, ओ कोयोडा,
मैं अपना वचन पूरा करूंगा, कोयोडा, कोयोडा
मैं सीधा सामलम्मा के पास जा रहा हूं
मैं पेड्डापुरम जा रहा हूं
गुड़ की भेली खरीद कर लाऊंगा
उसे हांडी भर पानी में घोलकर
देवी के लिए मीठा शरबत बनाऊंगा
मुट्ठी भर रुई लेकर बाती बनाऊंगा
और देवी के आगे बाती जलाऊंगा
ओ मेरे देवता ल्यूपडा, ल्यूपडा
मुझे चाबुक मत मारो, मुझे मत पीटो।

नशीली वस्तुएं और ग्रामीण लोकाचार

गांव के लोग सामान्यतया गांव में बने नशीले पदार्थों के आदी होते हैं। प्राचीन काल से ही सुरा का सेवन कठिन परिश्रम, युद्ध आदि के बाद शांत निद्रा के लिए किया जाता रहा है। वीरों के पेय वीरापनम का उल्लेख वीर रस की सभी गाथाओं में मिलता है। दूसरे नशीले पदार्थों का सेवन कामोत्तेजना के लिए या कामेच्छा को अधिक समय बनाये रखने के लिए किया जाता है।

"भारत" और "भागवत" महाकाव्यों में यादवों का वर्णन आता है जो अपने अंतिम दिनों में अत्यधिक भोगविलास में डूबे रहने के कारण पूरी तरह नष्ट हो गए। नशीले पेयों का दुष्प्रभाव सर्वविदित है फिर भी इनका सेवन दुनियादारी की तकलीफों को भुलाने के लिए किया जाता है। कृपा पाने के लिए, कुछ काम कराने या किसी काम में देरी कराने के लिए नशीली औषधियों का प्रयोग भी किया जाता है। मौज-मस्ती के लिए भी लोग नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं। हंसी-खुशी के त्योहार मनाने के लिए स्त्री-पुरुष नाचते हैं। मादक पेय के सेवन से नृत्य में उनका उत्साह बढ़ जाता है। कभी-कभी इसमें अभिमंत्रित पेय मिला कर प्रिय व्यक्ति या शत्रु को आकृष्ट करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है।

आमतौर पर ताड़ या खजूर के तने को छील कर रस निकाला जाता है और उसका खमीर बना कर पेय प्राप्त किया जाता है। इसे ताड़ी कहते हैं। ताड़ी बहुत सस्ती तथ सबसे लोकप्रिय है। ग्रामीण क्षेत्रों में ताड़ी बनाना एक फलता-फूलता उद्योग है। धनी जमींदार भी लुप छिप कर इसे उत्सव के दिनों में पीते हैं। गांव के गरीब लोग ही इसका अत्यधिक सेवन करते हैं और अपने मित्रों-संबंधियों की झाड़ फटकार सुनते हैं। स्वर्गीय डा० शिड्गु सीतापति ने "सवर" गीतों पर लिखे अपने निबंध में, नशीले पदार्थों के सेवन के संबंध में जो विचार प्रकट किए हैं वे इस प्रकार हैं :

> "वन-प्रांतों में रहने वाले लोगों में ताड़ी पीना एक आम बात है। स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी इसके आदि होते हैं। वे पीते हैं, नशे में उन्मत्त होकर गिरते हैं और बेहोश हो जाते हैं। सुबह से शाम तक ताड़ी पीना उनकी सामान्य आदत है। उत्सवों पर इस पेय का सेवन अधिक होता है। मेहमानों को उदार भावना के साथ यह पेय पेश किया जाता है। इस सारगर्भित उपदेश को एक छोटी सी कविता में बड़े अच्छे ढंग से रखा गया है :—

"जिस घर में ताड़ी मिलती है, वह शाही महल है
जिस घर में ताड़ी नहीं, वह भी क्या घर है ?
उसे तो श्मशान कहा जाना चाहिए ।[1]

किन्तु पियक्कड़पन को लोग बुरा मानते हैं। वे पियक्कड़ों की निंदा करते हैं :—

"मेरे लिए भात क्यों ?
मुझे भात नहीं चाहिए,
गन्ने का रस क्यों ?
मुझे यह नहीं चाहिए,
मुझे बस ताड़ी चाहिए, ताड़ी मैं उसे पीऊंगा ।"

पियक्कड़ के पास इसका जवाब है जो इस प्रकार है :—

"मैंने दिन भर खेत में हल चलाया है
खेत जोतते-जोतते मैं थक कर अधमरा हो गया हूं
मैं ताड़ी लूंगा, ताड़ी पीऊंगा
अपनी थकान मिटाने के लिए ।

पियक्कड़ पति के बेहोश हो जाने पर उसकी आज्ञाकारी पत्नी इस प्रकार विलाप करती है :—

ताड़ की ताड़ी उसने बहुत पी ली
मेरे पति के होश-हवास गुम हैं
मेरा पति नाच रहा है
मेरा पति बेहोश पड़ा है ।

वन-प्रांत के लोग न केवल ताड़ और खजूर का रस निकालते हैं बल्कि नीम आदि अन्य जंगली पेड़ों का रस भी विभिन्न प्रकार के पेयों के लिए निकालते है । गांव के मुखिया विभिन्न प्रकार के फलों-फूलों से कीमती मादक पेय तैयार करते हैं ताकि शासकों या दूसरे विशिष्ट अतिथियों की खातिरदारी की जा सके । यहां इस बात का उल्लेख करना

---

1. भारती, अक्तूबर 1938-पृ० 393

जरूरी होगा कि ग्रामीण जीवन के सामाजिक और धार्मिक ढांचे के साथ मादक पेयों का घनिष्ट संबंध, मादक पेयों की वैधता का एक कारण हो सकता है। ऐसा इसलिए होता है कि जो ताड़ या खजूर का पेड़ ताड़ी निकालने वाले गरीब आदमी के रोज़गार का साधन होता है, वही उसके लिए खुशी का स्रोत भी होता है। भले ही यह खुशी क्षणिक हो। ग्रामीण क्षेत्र में मद्यपान की आदत को स्वीकार करना शायद इसलिए आसान हो जाता है कि पुराणों मे मद्यपान का संबंध भारतीय देवी-देवताओं से जोड़ा है।

3

धर्म और जादू-टोना

ग्रामीण लोकाचार के दो मजबूत आधार हैं—धार्मिक विश्वास और जादू-टोने में विश्वास, परंपरा का ही एक हिस्सा है। परंपरा की पवित्रता इस आधार को बल देती और स्थानीय "देव-पुरुषों" पर विश्वास बनाये रखने में साधारण ग्रामवासियों की सहायक होती है - गांव या कबीले का मुखिया उन के लिए पथ-प्रदर्शक, मित्र और दार्शनिक होता है। वह रस्मी नियम निर्धारित करता है। परंपरागत नियमों-आदेशों का पालन कराता है और परंपरा के अनुसार न्याय करता है। वह मृत्यु दन्ड दे सकता है और नियम भंग करने वाले को गांव से निष्कासित कर सकता है। उनके सामान्य अनुष्ठान सरल होते हैं रिवाज के अनुसार उनका पूरे विश्वास के साथ पालन किया जाता है। जन्म, विवाह, मृत्यु आदि अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवसरों पर नियमों का सख्ती से पालन किया जाता है। अनुष्ठानों के निर्वाह के लिए एक परंपरागत भाषा होती है जो हर समूह में अलग-अलग होती है।

अनुष्ठानिक और धार्मिक ताने-बाने में अंधविश्वास का काला धागा भी रहता है। यह एक शब्द के बोले जाने या न बोले जाने तक भी सीमित हो सकता है। यह शुभ-अशुभ शकुन हो सकता है। इसका संबंध किसी व्यक्ति या वस्तु से बचने या उसे प्राप्त करने से हो सकता है। यह किसी बुद्धिमान व्यक्ति की सलाह हो सकती है। विचार, शब्द या कार्य जो भी इसका रूप हो, इसकी अवहेलना या इस पर संदेह कभी नहीं किया जा सकता। इसका उद्‍गम बहस का विषय नहीं होता। न इसका विश्लेषण किया जा सकता है, न वैज्ञानिक जांच।

शगुनों को सावधानी के तौर पर लिया जाता है। यदि किसी काम पर जाते समय छींक की आवाज सुनाई दे तो जाने वाला रुक जाता है, और वापस लौट आता है। इसी प्रकार बहुत से अशुभ शगुन होते हैं जिन्हें लोग मानते हैं। दायीं ओर से बायीं ओर

उड़ता कौआ अशुभ माना जाता है और कौओं की रति क्रीड़ा तो बहुत भयानक परिणाम लाने वाली मानी जाती है। उस विपत्ति से बचने के लिए संबंधित व्यक्ति की मृत्यु का झूठा समाचार उसके संबंधियों को भेजना पड़ता है। गली के कुत्ते का रोना भी अशुभ माना जाता है। चलते समय कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। पुरुष पहले दांया कदम रखते हैं और महिलाएं बायां। किंतु हमला करने वाली सेना को जब मार्च करने का आदेश मिलता है तो वे बायां कदम पहले रखती हैं। यह शत्रु की हार का पूर्व-बोध कराता है। छिपकली विपत्ति की सूचक है किंतु यह इस बात पर निर्भर करता है कि आवाज़ किस समय सुनायी दी और किस तरफ से आयी। छिपकली का शरीर के ऊपर गिरना भी शुभ या अशुभ माना जाता है। शुभ-अशुभ इस बात पर निर्भर करता है कि छिपकली शरीर के किस हिस्से पर गिरती है। बस्ती में उल्लू की उपस्थिति को अशुभ माना जाता है। सुबह बिस्तर से उठते समय बिल्ली को देखना या यात्रा पर जाते समय बिल्ली का रास्ता काटना विपत्ति का सूचक माना जाता है। यही स्थिति सांप की है। यदि किसी काम पर जाते समय सामने गीदड़ रास्ता काटे तो उस काम में सफलता निश्चित मानी जाती है। पालपिट्टा (नीलकण्ठ) का दिखायी देना और गरूड़ का उड़ना सौभाग्य सूचक माना जाता है। कुछ पालतू पशु-पक्षियों को शुभ-सूचक बोला बोलना सिखाते हैं।

पुरुषों के लिए दाएं अंग को और महिलाओं के लिए बांए अंग का फड़कना शुभ माना जाता है। स्वप्न भी अच्छे और बुरे की सूचना देते हैं। इनका अर्थ लगाने के लिए अक्सर ओझों से परामर्श लिया जाता है। प्राचीनतम तेलुगु गाथा पालनाटी कथा (पलनाडु की कहानी) और 'काटमराजु कथा" (राजा काटमराजु की कहानी) में स्वप्नों के अर्थ का उल्लेख मिलता है। स्वप्नावस्था ग्रामीण लोगों के लिए जाग्रतावस्था की तरह ही एक वास्तविकता होती है। और उसका महत्त्वपूर्ण अर्थ होता है। गर्भवती स्त्री को ग्रहण के के समय अंधेरे कमरे में रखने की प्रथा न केवल साधारण लोगों में है बल्कि शिक्षित वर्ग में भी है। इसके पीछे यह विश्वास है कि ग्रहण को देखने पर शिशु में अंग विकृति आ सकती है। यदि बच्चे का ऊपर का दांत पहले निकले तो उसे मामा के लिए अशुभ माना जाता है।

चिंतित और परेशान व्यक्तियों के मन का भार हल्का करने के लिए स्त्रियों का एक वर्ग ज्योतिषी का काम करके रोज़ी कमाता हैं। इससे चिंतित व्यक्तियों के मन का तनाव कम होता है और उन्हें निराशा में नयी आशा मिलती है। भविष्य वक्ता का मंत्र निश्चित होता है और उसे विभिन्न प्रकार से बोला जाता है। आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन कर दिया जाता है और प्रश्न विशेष के अनुसार इसे आकर्षक ढंग से पढ़ा जाता है। अंत में, संबंधित व्यक्ति को कुछ दिलासा दिया जाता है। उसे सुनकर

चिंतित व्यक्ति का मानसिक तनाव कम हो जाता है। इनके ग्राहक आमतौर पर उत्सुक प्रेमी, प्रिय से विलग हुई प्रेमिकाएं, विवाह योग्य लड़कियां, घरेलू समस्याओं से परेशान माता-पिता तथा लंबी बीमारी से ग्रस्त लोग होते हैं। प्रश्न कभी-कभी परोक्ष रूप से दूसरों के लिए पूछे जाते हैं। कभी-कभी भाग्य बताने वाली ये महिलाएं मध्यस्थ का काम भी करती हैं और इसके लिए इन्हें पर्याप्त पुरस्कार भी मिलता है। वे संदेश भिजवाती हैं, मालिक की वकालत करती हैं और ऐसे काम करती हैं जो अन्यथा असंभव होते हैं। इन महिलाओं की बड़े घरों तक भी पहुंच होती है।

स्त्रियों पर कभी-कभी अच्छी या बुरी आत्माओं के भूत भी सवार होते हैं। जब किसी स्त्री पर भूत सवार होता है तो उसका व्यवहार असामान्य हो जाता है। वह फर्राटे से बोलने लगती है और ऐसी बातें करती है जिनके बारे में सुनने वालों को कोई ज्ञान नहीं होता। वह सुनने वालों को कुछ करने या न करने के आदेश देती है। कुछ भागों में वल्लुबंड (एक पत्थर) को छूने की विचित्र प्रथा भी देखी जाती है। विमूढ़ावस्था में पड़े व्यक्ति स्नान करके इस पत्थर को छूते हैं। यह पत्थर सामान्यतया मंदिर के अहाते में होता है। इस पर दोनों हथेलियां रख कर आंखें बंद करते हैं और ध्यान लगाते हैं। स्वप्नावस्था की तरह अवचेतन में ही उन्हें कोई समाधान मिल जाता है। उस अवस्था में प्राप्त ज्ञान का वे अनुकूल प्रतिकूल अर्थ लगाते हैं। यह प्रथा भोले-भाले और हताश व्यक्तियों को सताने का कारण भी बनी हुई है।

प्रदेश के कुछ भागों में परिवार की समाप्ति कर कुआंरी कन्या को परिवारजन करके ग्राम-देवता या देवी की सेवा में समर्पित कर देते हैं। उसे देवता की पूजा में निरंतर व्यस्त रहना पड़ता है। कभी-कभी वह मूर्छा की आवस्था में दूसरों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर देती हैं। ऐसी स्त्रियों को 'गणचारी' या 'शिवशक्ति' कहा जाता है। देवता की पूजा को कभी-कभी पुरुष भी समर्पित होते हैं और वे स्त्रियों के वस्त्र-आभूषण पहनते हैं।

इनमें से कुछ स्वयं जादू-टोना करते हैं या भाड़े के चेलों से कराते हैं। जादू-टोना से शत्रु को या तो मार दिया जाता है या हमेशा के लिए अपंग कर दिया जाता है। इसके इसके लिए एकांत में अशुभ मंत्र पढ़ा जाता है और जादू-टोना किया जाता है। जिस व्यक्ति के विनाश के लिए यह किया जाता है उस तक बड़ी चालाकी से यह खबर पहुंचा दी जाती है। इस सूचना के फलस्वरूप उसे जो यातना भोगनी पड़ती है, उसी से उसकी बरबादी हो जाती है। प्रतिकारक उपायों के लिए भाड़े पर व्यक्ति रखे जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि जादू-टोना ग्राम्य जीवन का सबसे भद्दा पहलू है। ओझे चेले अपने शत्रुओं को सताने के लिए विभिन्न तरीके इस्तेमाल करते हैं। वे आदमी की हड्डियों और खोपड़ियों के चरखे इस्तेमाल करते हैं, मिट्टी या लकड़ी की मूर्तियों

का उपयोग करते हैं और मेंढक के जिस्म पर नाखून चुभो कर शत्रु को पीड़ा पहुंचाते हैं या उसका अंगभंग करते हैं। इस प्रथा में, विश्व के अन्य भागों में प्रचलित वूडू या सुई चुभोने की प्रथा से समानता देखी जा सकती है।

रोग और दुख के निवारण तथा सुख की प्राप्ति के लिए तावीज आदि पहने जाते हैं। आधुनिक विज्ञान इसे विश्वास के द्वारा प्रचार कह सकता है। किंतु यह प्रथा बहुत पुरानी है और विश्वास इतने दृढ़ हो चुके हैं कि इन्हें बदला या समाप्त नहीं किया जा सकता। शिशु का लगातार रोना, पांव में मोच आना, बुरे दृश्य का प्रभाव, शारीरिक पीड़ा और उसी प्रकार की अनेक तकलीफों के लिए तावीज का जादुई स्पर्श आवश्यक होता है। यह तावीज तब लिया जाता है जब रोगी उपचार के दौरान शुद्ध जीवन के कुछ पथ्यापथ्य नियमों का पालन कर लेता है।

पशु-बलि, विशेष कर भेड़ या भैंस की, आम बात है। देवी की भूख को शांत करना ही पड़ता है। लोगों में रस्म इस कदर घर कर चुकी है कि इस पर कोई संदेह प्रकट नहीं कर सकता। विश्वास किया जाता है कि इसमें किसी के सहयोग न देने पर परिवार के सभी सदस्यों पर मुसीबत आती है।

गांव के लोगों में धार्मिक गतिविधियों का केंद्र ग्राम की देवी होती है। वह समाज की अखंडकारी शक्ति है। इसकी स्थापना सामान्यतया अत्यंत प्राचीनकाल में हुई मानी जाती है और किसी न किसी पुराण-कथा से उसका संबंध होता है। लोकप्रिय कहानियों में प्राचीन नायक-नायिकाएं आती हैं। भूत के लिए देवी उन पर क्रुद्ध होती है और उनके सदगुणों के लिए देवी उन्हें पर्याप्त रूप से पुरस्कार देती है। कभी-कभी कोई यात्री घोषणा करता है कि उसने जंगल के किसी निर्जन स्थान पर या तलाब के किनारे या उजाड़ जगह पर एक मूर्ति देखी है शायद गांव के एकाध व्यक्ति ने इस प्रकार स्वप्न देख लिया हो फिर शीघ्र ही सारा गांव इस प्रसंग में रुचि लेने लगता है। गांव के लोग जुलूस के रूप में जाकर मूर्ति को उठा लाते हैं और श्रद्धालु भक्तों तथा गांव के संरक्षकों द्वारा बनाये गये उचित स्थान पर उसे प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। इसमें सामूहिक रुचि ली जाने लगती है और लोग इससे मनोवैज्ञानिक संतोष प्राप्त करते हैं। वंश परंपरा के आधार पर नियुक्त पुजारी हर रोज इसकी पूजा करता है। साल दो साल या तीन साल में एक बार वहां कोई उत्सव मानाया जाता है और गांव के प्रत्येक व्यक्ति को उसमें कुछ न कुछ सहयोग देना पड़ता है।

देवी का छोटा-सा मंदिर आमतौर पर गांव के बाहर होता है और वह कामासक्त प्रेमियों, विशेषकर अवैध संबंध वाले प्रेमियों, का मिलन-स्थल होता है। यदि प्रेमी निश्चित वायदे के अनुसार नहीं मिलने जाते हैं तो उसका कारण देवी की अप्रसन्नता माना जाता है। एक जनश्रुति के अनुसार तेलुगु के महान कवि श्रीनाथ ने एक तेलिन

से मिलने के लिए ऐसे स्थान को चुना। गांव की देवी के मंदिर में उन्होंने मिलने का वायदा किया। वह समय पर पहुंच गये लेकिन तेलिन नहीं आयी। क्रुद्ध होकर कवि ने वहां आशु कविता पढ़ी जो अश्लील थी और उसमें देवी पर दोषारोपण किया गया था "गाथा सप्तशती; 2— 94 में स्त्री की सहेली उसके पुराने प्रेमी को जिसने उसे बहुत पहले छोड़ दिया था, सूचना देती है, "हे युवक, तुमने जो पुष्पमाला उसे दी थी वह अब भी उसे पहने हुए है किंतु वह सूख गयी है और उसकी सुगंध नष्ट हो चुकी है। वह मंदिर की जड़ देवी के समान है, जो सूखे फूलों की माला पहने हुए है।" प्रेमी 'दुबारा उससे नहीं मिला और न ही भक्तों ने देवी पर ताज़ा फूल-मालएं चढ़ायीं। 'गाथा सप्तशती" 1—64 में पुनः कहा गया है :—

"मंदिर भग्नावस्था में है। छत टूट कर नीचे गिर गयी है। लोहे की नंगी कीलें बाहर निकल आयी हैं। यह टूटा-फूटा मंदिर भयानक कीलों वाली कैदियों की वध-स्थली जैसा लगता है। यहां जंगली कबूतर गुटरगूं करते हैं।"

इस तरह का डरावनी ध्वनियों वाला भयानक स्थान, प्रेमियों के मिलन के लिए सब से उपयुक्त होता है। यहां प्रेमियों के मिलन में किसी तीसरे व्यक्ति के आने से बाधा पड़ने की भी संभावना नहीं होती। जादू-टोने से संक्षिप्त अनेक अनगढ़ उपचारों की जानकारी आमतौर पर बूढ़ी औरतों को होती है। भावुक तथा विरह-दग्ध स्त्री-पुरुष अक्सर उनके शिकार होते हैं। उन्हें प्रिय को अपनी ओर खींचने के लिए किसी चीज़ की आवश्यकता होती है। इसके लिए जो पकवान तैयार किया जाता है उसे बिल्कुल गुप्त रखा जाता है और बदनामी के डर से उसकी असफलता भी गुप्त रखी जाती है।

स्थानीय वीर गाथाओं, गाथाओं और लोक कथाओं में नायक की विजय और खल-नायक को दंड दिलाने के लिए इन उपकरणों की सहायता का उल्लेख मिलता है। अपनी सरलता में भी लोगों का अदृश्य-शक्ति पर विश्वास बना रहता है। वह शक्ति विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। जब कारण समझ में नहीं आता उसे जादू का अद्भुत चमत्कार मान लिया जाता है।

जादू और रोगोपचार

गांव के लोगों के पास मन और शरीर के विभिन्न रोगों के उपचार के लिए अपनी औषधियां और अपने तरीके होते हैं। जादू की शक्ति अक्सर गांव के वैद्य-हकीम के पास होती है जिसे आयुर्वेद का भी अच्छा ज्ञान होता है। कभी-कभी वे निरक्षर भी होते हैं, किंतु औषधि-ज्ञान उन्हें विरासत में मिल जाता है। उन्हें सैद्धांतिक ज्ञान की अपेक्षा औषधियों का व्यावहारिक ज्ञान अधिक होता है। कुछ लोग तो एक ही जड़ी-बूटी का उपचार

जानते हैं। वोया शिकारी लोगों को जड़ी-बूटियों का बहुत अच्छा ज्ञान होता है और वही गांव के वैद्य को जड़ी-बूटियां लाकर देते हैं। दाई का काम करने वाली नाईन को भी घावों को ठीक करने वाली जड़ी-बूटियों और पत्तों का ज्ञान होता है लगभग सभी माताएं खांसी, जुकाम, दस्त, आंखों का आना आदि सामान्य बाल रोगों का उपचार जानती हैं। मिरगी जैसी गंभीर बीमारियों का भी स्थानीय इलाज किया जाता है। मैं कुछ ऐसे वैद्यों को व्यक्तिगत रूप से जानता हूं जो पीलिया, छाती का फोड़ा, दमा और कुत्ते के काटे का एक ही जड़ी-बूटी से इलाज कर सकते हैं। सांप और बिच्छू के डंक का इलाज भी वे जानते हैं। विष उतारने के लिए वे औषधि और जादू का अलग-अलग या मिलाकर उपयोग करते हैं।

मज़ेदार बात यह है कि बच्चे चेक्का, बिट्टी, गुडुगुडुगंचम आदि खेल खेलते समय जो तुकबंदियां बोलते हैं, उनमें रोगोपचार का उल्लेख होता है। "कालगज्ज कंकलम्मा" गीत में खुजली और एक्ज़िमा की औषधि का वर्णन है। कुछ रहस्यपूर्ण और दार्शनिक लोकगीतों और गुडुगुडुगंचम जैसे बालगीतों में सांप के डसने के उपचार का जिक्र होता है। करंजी फलों से खेले जाने वाले खेल "कच्चकाय आट" के गीत में टूटी हड्डी को जोड़ने और मोच को ठीक करने का उल्लेख आता है। "कोंगा-कोंगा गोलु" गीत में गलका का इलाज बताया गया है।

गांव के पशु-चिकित्सक पशुओं के बहुत से रोगों को ठीक कर देते हैं। अरंडी के पौधे और ज्वार के डंठल से निकलने वाली नई कोंपलें आदि जहरीली होती हैं। इन कोंपलों को खाकर गांव के अनेक पशु मरते हैं। इसलिए प्रत्येक गांव में कम से कम एक व्यक्ति ऐसा होता है जो पशुओं की विभिन्न बीमारियों का इलाज जानता है। इसके लिए वे औषधि, जादू-टोना और धूनी आदि सभी का उपयोग करते हैं। यह लोकज्ञान विशेषकर औषधि और जादू-टोने का ज्ञान, सावधानी से गुप्त रखा जाता है। अतः वैद्य अपने जीवन के अंत में इसे केवल एक व्यक्ति को देता है जो अक्सर उसका पुत्र या शिष्य होता है।

लोक साहित्य में मौसम

लोक-कलेंडर का लोगों के जीवन में बड़ा महत्त्व है। मौसम की पूर्व सूचना देना एक मुख्य काम है। मौसम के परिवर्तनों पर पूरी तरह निर्भर होने के कारण लोगों को विश्वसनीय सूचना की हमेशा जरूरत पड़ती है। गांव का पुजारी और अन्य बुजुर्ग लोग गांव के बुद्धिमान व्यक्ति माने जाते हैं। विभिन्न बातों पर उनकी सलाह लेनी पड़ती है। जैसे कि बारिश कब होगी, पछुआ हवाएं कब चलेंगी, तालाब और नदियां पानी से कब भरेंगी और वे कब खेती का काम शुरू और खत्म कर सकते हैं।

वर्षा का अनुमान क्षितिज के पास चंद्रमा के आस-पास बने सफेद दायरे से लगाया जाता है। यदि चंद्रमा का यह सफेद प्रभा मंडल चांद को छूता हुआ हो तो वर्षा में विलंब की संभावना होती है। यदि प्रभा-मंडल चांद से दूर हो तो वर्षा का निकट होना माना जाता है। दुब्बेनालु या तुनिगालु ड्रैगन फ्लाई (उड़ने वाला एक जीव) का आकाश में दिखाई देना निकट भविष्य में वर्षा का सूचक होता है। मौसम संबंधी इन पूर्वानुमानों के मूल में लोगों का लंबा अनुभव होता है। सयाने लोगों की सलाह पर उनका इतना विश्वास होता है कि वे आशा और आत्म-विश्वास से भर जाते हैं। वे प्रकृति के देवताओं से लाभ-वृष्टि की प्रार्थना करते हैं। उनके भविष्य-कथनों में उन दिनों को भी बताया जाता है जो यात्रा, खेती के काम, सगाई, विवाह, गृह प्रवेश या ग्राम्य जीवन की दूसरी सामान्य गतिविधियों के लिए शुभ होते हैं।

प्रकृति के निकट से देखने और पूर्वजों के अनुभवों के कारण उनके पास जीवन के विभिन्न क्रियाकलापों से संबंधित विशिष्ट निर्देशों का मौखिक रिकार्ड होता है। भोर के तारे का उगना, पानी से लदे या विना भाप के बादलों का इकट्ठा होना, हवाओं का चलना, चांद बढ़ना और घटना, सूर्य का डूबना आदि घटनाओं का अलग-अलग महत्त्व होता है। आकाश में सत्ताईस नक्षत्रों की गतियों का अर्थ लोगों के जीवन के अनुरूप लगाया जाता है। रात को समय का अनुमान आसमान में सितारों की स्थिति से लगाया जाता है। लोगों ने इन सितारों और ग्रहों को अपने नाम दिये हैं जैसे—पोडुपु चुक्का (भोर का तारा), सांदे चुक्का (सांझ का तारा), गोरुकोपयालु (नक्षत्र) (दक्षिण में स्थित पिल्लाला कोडि (कृतिकापुंज), मंचबुकोल्लु (पेगासस), अरुंधती (सप्तर्षि) गोलकावडि उज्जवल तारक-पुंज का क्षेत्र) आदि। भविष्य के संबंध में उन्हें ऊपर की शक्तियों और प्रकृति की कृपा पर पूर्ण विश्वास होता है।

4

रस्मो-रिवाज और परंपराएं

भारत के अधिकांश ग्राम्य-समाज में पितृवंश परंपरा प्रचलित है। मेघालय या अरुणाचल प्रदेश के कुछ उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों को छोड़ कर अन्य क्षेत्रों में मातृवंश परंपरा बिरले ही देखने में आती है। इस प्रकार ग्राम्य समाज में प्रचलित आचार संहिता के अनुसार निर्धारित कृत्याकृत्य के नियमों का सख्ती से पालन किया जाता है और उसमें किंचित स्थानीय हेर-फेर भी हो सकता है। निस्संदेह रस्मों में स्थान के अनुसार भिन्नता होती है और यह भिन्नता इस बात पर निर्भर करती है कि वह क्षेत्र देहाती है, वन है अथवा आदिवासी। उदाहरण के लिए, यह सर्वविदित है कि विवाह संबंध एक गोत्र में होते हैं। आदिवासी लोग दूसरी जातियों या अजनबियों में विवाह को बुरा मानते हैं और इस तरह के विवाह को अवैध मानते हैं। सहपलायन को भी बहुत बुरा माना जाता है।

चेंचू और यानादी एक ही गोत्र के आदिवासी लोग हैं जो दक्षिण-पश्चिमी भागों के पहाड़ी इलाके में समुद्रतटीय क्षेत्र में बसे हुए हैं। चेंचू अधिकांशतः पहाड़ी लोग हैं जो पूर्वी घाट में श्रीशैलम पर्वत क्षेत्र में बसे हुए थे। कुछ समय बाद उनके कुछ परिवार धीरे-धीरे मैदानी इलाके में फैल गये। पुलिकर झील का श्रीहरिकोटा द्वीप जिसे प्रलय कावेरी भी कहा जाता है, यानादी लोगों का मूल स्थान है। चेंचू और यानादी कई बातों में एक दूसरे के समान हैं। पर्वतवासी चेंचू हैं और तटवर्ती मैदानों में रहने वाले यानादी हैं। चेंचू जंगलों में शिकार करते हैं और यानादी उथले समुद्र तथा झीलों और तालाबों में मछलियां पकड़ने का धंधा करते हैं।

यानादी लोगों में शादी से पहले प्यार और मुनौवल की प्रथा है। यानादी जोड़ों के लिए विवाह का पहला वर्ष सब से सुखद होता है। शादी से पहले प्रेमी-प्रेमिका ही आपस में बात तय करते हैं और इसमें माता पिता या दूसरे बुजुर्गों से बिरले ही परामर्श लिया

जाता है। उनके निर्णय के बाद मित्रों को आमंत्रित किया जाता है, पान-सुपारी बांटे जाते हैं और दूल्हा-दुल्हिन के गले में विवाह सूत्र डालता है जो इस बात का सूचक होता है कि अब वे पति-पत्नी की तरह एक साथ रहने के लिए सहमत हैं। आदिवि यानादियों की तरह जो जंगलों में रहते हैं, बहुत से अदिवासी विवाह आदि में किसी प्रकार का प्रदर्शन पसंद नहीं करते। किंतु रेड्डी यानादी रस्मो-रिवाज का बड़ा ध्यान रखते हैं। तालि (विवाह-सूत्र) दिन में एक निश्चित समय में ही बांधी जाती है। नियम के अनुसार यह ठीक दोपहर का समय होता है। उत्सवों पर दुल्हिन के मामा की बड़ी भूमिका रहती है। वह दुल्हिन को स्थान आदि की सभी वस्तुएं देता है। इसके अतिरिक्त वह उसे मालपुए भी देता है जिसे शादी में सभी संबंधियों को बांटना होता है। वर-वधू के कपड़ों के छोरों पर गांठ बांधी जाती है जिसका अर्थ होता है कि अब उन्हें साथ-साथ रहना है। उस रात दोनों को सप्तऋषि के एक तारे अरुंधति के दर्शन करने को कहा जाता है।

इसके साथ ही नाच-गा कर खुशियां मनायी जाती हैं। एक व्यक्ति विदूषक का अभिनय करता है और सब को हंसाता है। जिन लोगों की सामर्थ्य होती है वे तीन दिन तक विवाह का उत्सव मनाते हैं। वर को वधू की कीमत के रूप में कुछ राशि देनी होती है। वर-वधू पक्ष के बुजुर्ग लोग इस खर्च में साझीदार होते हैं। वर-वधू हल्दी-चंदन का लेप करते हैं। ये सब क्रियाएं उस अवसर विशेष के लिए मिट्टी से बने छोटे पंडाल में की जाती हैं।

सामान्यतया पति-पत्नी का आपस में बहुत प्यार होता है और अलग होने पर वे विरहवेदना में तड़पते हैं। अतः जरा भी बिछड़ना न पड़े इसके लिए पति हमेशा पत्नी के साथ रहता है। पत्नी उससे अनन्य प्रेम की अपेक्षा करती है। अक्सर वे हंसते-खेलते रहते हैं और पत्नी से पति की दूरी सहन नहीं होती है। यदि वह बार-बार ऐसी गलती करता है तो पत्नी शादी बंधन तोड़ कर उसे दंड देती है और अपने मनपसंद किसी दूसरे पुरुष को बिना टंटे-झगड़े के स्वीकार कर लेती है। यानादियों में पत्नी के एक से अधिक पति नहीं होते किंतु पुनर्विवाह की प्रथा है। स्त्रियों में बांझपन बहुत कम पाया जाता है। यानादियों का प्यार सरल, प्रत्यक्ष और सहज होता है और प्रेम, स्नेह तथा राग उसकी मूल विशेषताएं हैं।

यानादी परिवारों में व्यभिचार नहीं होता लेकिन अवैध संबंध अनहोनी चीज़ नहीं है। पति बेवफाई करने वाली पत्नी को या तो छोड़ देता है या कभी-कभी अलग रहकर चुपचाप दुख सहता है। विचित्र बात यह है कि यानादी पुरुष कभी बदला लेने का विचार मन में नहीं लाता। वह रक्त बहाने के खिलाफ़ होता है। पति-पत्नी के अलग होने पर बच्चों की कोई समस्या नहीं होती। बच्चा छोटा हो तो मां के साथ रहता है। पिता की कोई सम्पत्ति नहीं होती, अतः सम्पत्ति का उत्तराधिकार देने की चिंता उसे नहीं सताती।

तलाक अक्सर दो कारणों से होता है। किसी असमान्यता के कारण पति में उत्पन्न शारीरिक विकर्षण या कामेच्छा का समाप्त हो जाना। पति-पत्नी बिना शोर-शराबे के अलग हो जाते हैं। प्रत्येक पक्ष बिना विलंब या ग्लानि के अपने लिए नया साथी चुन लेता हैं विधवायें शादी कर लेती हैं और बिना शादी के भी किसी से संबंध स्थापित कर लेती हैं। किंतु मामा, दादा और मौसी के लड़के की विधवाओं से शादी नहीं हो सकती।

आधुनिक समय में शिक्षा के प्रचार ने इन लोगों पर नयी सभ्यता का प्रभाव डाला है और कई लोग उत्तरदायित्वपूर्ण पदों के लिए योग्य पाये गये हैं। इनमें अध्यापक; इंजीनियर, कुशल कारीगर हैं। यद्यपि उनका यह उत्थान सामाजिक विकास की दृष्टि से अच्छा है लेकिन इसने इनके उस प्राकृतिक सुख-सन्तोष को कम कर दिया है जो इनकी-पद्धति की अत्यंत मूल्यवान विरासत थी।

उनके समवर्ती चेंचू लोग ओबूलेसा नरसिंह के कट्टर भक्त हैं जो विष्णु के चौथे अवतार माने जाते हैं। किंवदंती यह है कि चेंचू कन्या को विष्णु ने वन में मोहित कर लिया था और तब से चेंचू विष्णु को अपना दामाद मानते हैं। इस कहानी को अपने गीतों में दोहराते हैं। यहां ऐसे ही एक गीत का भावार्थ दिया जा रहा है। यह गीत चेंचू कन्या और भगवान नरसिंह के बीच वार्तालाप के रूप में है।

नरसिंह

सोने की मूरत सी सुंदरी ! तुम कौन हो ?
तुम्हारे समान इस संसार में कौन है ?
तुम्हारा रूप कितना सुंदर, अंग कितने कोमल हैं
मोहक रूप, मन को जीतने वाला मुखड़ा है
मुझ से दूर अविचल क्यों खड़ी हो
जब कि काम-तप्त मैं मुग्ध खड़ा हूं।

चेंचू कन्या

मैं कौन हूं, इससे तुम्हें क्या सरोकार ?
मेरे निकट मेरे रास्ते में मत आओ
अदब के साथ दूर से बात करो
यदि नहीं, तो मेरे धनुष का
तीखा तीर तुम्हें मजा चखाएगा
तुम, जिसके बड़े-बड़े गाल, लंबे दांत

बाहर निकलती आंखें
अस्त-व्यस्त मूछें हैं
जिसका माथा सीधा और लंबा है
बाल सूखे और कमर गोल है
जहां खड़े हो, वहीं खड़े रहो
मैं तुम से नहीं डरती
मेरे भाई-बंधुओं का क्रोध
तुम्हें एक पल में खत्म कर देगा।

नरसिंह

ओ सुंदरी, तुम इस वन में क्यों भटक रही हो।
और मेरी तरफ देखती भी नहीं
मुझ से क्या अपराध हुआ है
जो तुम इतनी कठोर हो
तुम जगमगाते हीरों का समूह हो
तुम्हें जिसने बनाया
उसकी प्रशंसा के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं
निर्दय या दयालु जैसी भी तुम हो
मेरे पास आओ
जंगलों में चल कर, पर्वत को चढ़ कर
मुझे छोड़ कर मत जाओ।

चेंचू कन्या

नर और सिंह से संयुक्त रूप
तुम किस तरह मेरे योग्य हो
बंद करो अपना प्रेमालाप
मेरे तीखे भाले से सावधान रहो
और भाग जाओ अपने पर्वतों में।

नरसिंह

ओ सुंदरी, सुघड़ चालवाली
मोती माणिक की अंगियावाली

मेरा हृदय आतुर है
तुम्हारे आलिंगन के लिए
मैं भद्राचल का स्वामी हूं
पर्वतराज की कन्या पार्वती
मेरी प्रशंसक है
देवराज इंद्र
करता है मेरी पूजा
लेकिन तुमसे अलग, मैं नहीं रह सकता
अनिद्रा मुझे सहन नहीं होगी
और नींद मुझे आएगी नहीं

यह वार्तालाप चलता रहता है और धीरे-धीरे दोनों एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। प्रेम उनके दिलों की धड़कन तेज कर देता है। वे परस्पर प्रेम भरी बातें करने लगते है। गीत आगे बढ़ता है :—

चेंचू कन्या

क्या तुम पेड़ पर चढ़ सकते हो ?
क्या तुम झाड़ियों को साफ कर सकते हो ?
क्या तुम मधुमक्खियों के छत्ते से
मेरे लिए शहद ला सकते हो ?

नरसिंह

मैं पेड़ों पर चढ़ सकता हूं
पक्षियों पर निशाना लगा सकता हूं
और मधुमक्खियों के छत्ते से
निश्चय मीठा शहद ला सकता हूं।

चेंचू कन्या

क्या तुम घने जंगल को पार कर सकते हो ?
क्या तुम घोर जंगल में जा सकते हो ?
ओ नरसिंह ! क्या तुम मुक्के से
हाथी पर चोट कर सकते हो ?

नरसिंह

मैं सारे जंगल में पैदल घूम सकता हूं
सब तरह के फल मैं ला सकता हूं
सारी पहाड़ी नदियां तैर के पार कर सकता हूं
प्रत्येक जल-मुर्ग और पशु का शिकार कर सकता हूं
चेंचुओं के देवता को मैं सिर झुकाऊंगा
चेंचू लोगों के बीच मित्र बन कर रहूंगा।

चेंचू कन्या

क्या तुम मुझे मोर लाकर दे सकते हो
तिरछी मुड़ी गर्दनों वाले

नरसिंह

अवश्य, प्रिय,
विश्वास करो, मैं इसी समय कसम खाता हूं
मैं तुम्हारी हर आज्ञा का पालन करूंगा।

इस गीत में सादगी, वन ग्रामीण सौंदर्य अपार हर्ष एवं प्रेम की अभिव्यक्ति मिली है। इसके अतिरिक्त इसका पौराणिक महत्त्व है और आदिवासी स्त्रियां इसे गाते-गाते विभोर हो उठती हैं।

थर्स्टन ने एक गीत का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है। यह गीत जिसे ओबूलेसू भी कहा जाता है चेंचू कन्या और नरसिंह के विवाह का वर्णन करता है। यह गीत दो पुरुषों और एक स्त्री द्वारा गाया जाता है—

विवाह

[1]आवाराम-पात की तालि थी
ओ चेंचुओं के स्वामी।
जंगल के पेड़ों की पत्तियों से बासिकम[2] बना
ओ चेंचुओं के स्वामी।

1. कासिया औरि कुलटा
2. शादी पर वर-वधू का परिधान

जंगली हल्दी से काम लिया कंकण[1] का
ओ चेंचुओं के स्वामी ।
[2]पारू पेड़ के पत्तों से वस्त्र पहने
ओ चेंचूओं के स्वामी
[3]पन्नू के पत्तों की अंगिया पहनी
ओ चेंचूओं के स्वामी
दुर्गम पर्वतों पर भटकते हुए
ओ चेंचुओं के स्वामी ।
घने जंगलों में चलते हुए
ओ चेंचुओं के स्वामी ।
[4]असंभव काम करते हुए
ओ चेंचुओं के स्वामी ।
ओबुलेसा की शादी हुई
ओ चेंचुओं के स्वामी ।
चौकोर मंच बनाया गया
ओ चेंचुओं के स्वामी ।
मंच पर तीर गाड़े गये
ओ चेंचुओं के स्वामी ।
बांस के चावल वर-वधू पर छिड़के गए
नारियल के खोल तीरों के नोक पर रखे गए
ओ चेंचुओं के स्वामी ।
इस तरह दोनों का ब्याह हुआ ।

शिक्षा की प्राचीन विधि आधुनिक व्यक्ति को अजीब लगती है । वैदिक ज्ञान समाज के एक विशेष वर्ग के लोगों के लिए सीमित रखा गया था । इस प्रकार ज्ञान का उपयोग सब की भलाई के लिए किया जाता था । उसके बाद साहित्य आया जिसे पुराण और महाकाव्य कहा जाता है । इनमें दर्शन, नैतिक शास्त्र, कला, शिल्प में आदि सब कुछ था । उनका विस्तार विश्वकोष जैसा था । यह ज्ञान फुर्सत के क्षणों में जनसाधारण को दिया

1. पवित्रता और पथ्यापथ्य नियम पालन का चिह्न
2. एरिथ्रीना इंडिका
3. एलेक्जेंड्रियन लारेन
4. असंभव कार्य करना ।

जाता था। ज्ञानलिखित रूप से नहीं, मौखिक रूप से दिया जाता था। प्रत्येक गांव में संभव हो तो मंदिर के पवित्र प्रांगण में, विशाल जनसमूह को पुराणों की कथा सुनायी जाती थी और उसका अर्थ बताया जाता था। मानव अस्तित्व के चार आदर्शों, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पर बार-बार जोर दिया जाता था और जनसाधारण को अपने परिवेश की गंदगी तथा अंधेरे से ऊपर उठाया जाता था। प्रत्येक भारतीय किसान या श्रमिक जीवन के आदर्शों पर विश्वास करता था जैसे, कर्म पूजा है, अच्छे कर्म का अच्छा फल मिलता है, सदाचार का जीवन जीयो, खुद जीयो और दूसरों को जीने दो, देवताओं का सम्मान करो, गुरु का सम्मान करो और अतिथि का सत्कार करो। ग्रामवासियों की सादगी, आतिथ्य-सत्कार, स्नेहशीलता और न्यायप्रियता धर्मप्रधान सांस्कृतिक विरासत से प्रस्फुटित हुई हैं। स्पष्ट है कि इसकी प्रेरणा महाकाव्यों और पुराणों से ली गयी है।

महाकाव्यों की विवाह-कथाएं लोगों में बहुत लोकप्रीय हैं। "सीता कल्याण" (सीता का विवाह), अनेक लोकगीतों का लोकप्रिय विषय है।

सोने का चंदोवा
मणियों से जड़े पाट
सुगंधित फूलों के पंखे
रंग-बिरंगी फुल-मालाओं से
सजी हुई वेदी
दुल्हिन को देखने के लिए आतुर नयन
ओ श्रीराम।

प्रत्येक किसान महाकाव्य की सब नायिकाओं को जानता है। महिलाएं प्रत्येक शुभ अवसर पर ये विवाह गीत गाना अपना कर्त्तव्य समझती हैं। विवाह में आए मेहमानों का इन गीतों के द्वारा मनोरंजन किया जाता है।

विवाह के बाद अत्यंत भावुक क्षण आते हैं जब वधू को अपने नये घर के लिए विदा किया जाता है। वधू जो अपने माता-पिता के घर में बड़े लाड-प्यार से पलती है, अब अपने पति के साथ उसके घर जाती है। यह घर उसके लिए नया होता है किंतु उसे हमेशा वहां रहना होता है। उसे अजनबियों के बीच रहना होता है। उसका एकमात्र साथी उसका पति होता है और वह भी उसका परिचित नहीं होता नया गांव भी अपरिचित होता है। उसके मन में एक ही आशा होती है और वह है पति का प्यार भरा साथ। इसके अतिरिक्त उसे कोई चिंता नहीं होती। वर विवाह के बाद के जीवन

की कल्पना से खुश होता है। लेकिन बिछड़ने का दुख माता-पिता को होता है। माता-पिता जिन्होंने बचपन से उसे बड़े लाड़ प्यार से पाला होता है, वही उसे एक अजनबी के साथ भेज देने पर विवश होते हैं। यह विदाई माता पिता के लिए अत्यंत कष्टदायी होती है।

प्रस्तुत गीत साधारणतया वधू की मां या परिवार की हितचिंतक किसी बड़ी-बूढ़ी महिला द्वारा गाया जाता है :—

लाड़ली बच्ची तू सास को अपनी प्यारी मां समझना
प्यारी बेटी, ससुर को पिता समझो
प्यारी बेटी, तुम्हारा पति, अब से घर का राजा है
घर पर उसका राज चलेगा, वह घर का मालिक है
तुम उसके घर की देखभाल करना
वह तुम्हारा अपना घर होगा
वह उस घर का राजा होगा
और तुम उस घर की रानी होगी
तुम उसके घर की भरपूर फसल होगी
तुम उसकी धन-दौलत होगी।

यद्यपि इस गीत में वधू को कुछ उपदेश दिए हैं। किन्तु अक्सर ऐसा होता है कि गीत विशेष महत्त्व का बन जाता है।

एक और विचित्र गीत यहाँ दिया जा रहा है। इस गीत में कहा गया है कि वधू की छोटी बहन के मन में बड़ी बहन के ससुराल जाते समय क्या भावनाएं और आशाएं उठती हैं। साली होने के नाते उसका वर के साथ खुल कर हंसी-मज़ाक करने का हक होता है। वह हल्के-फुल्के ढंग से बात करती है, हंसी-मज़ाक करती है। और हाजिर-जवाबी भी दिखाती है। वर को वह जो कुछ कहती है उसमें प्यार, करूणा और परोक्ष उपदेश होता है :

मेरी बहन को धान कूटने में मत लगाना
वह थक जाएगी
खाना पकाने और झाड़-बुहार के काम में उसे लगाओगे
तो उसे बड़ा कष्ट होगा
उसे चूल्हा सुलगाने से दूर रखना

उसकी आंखों में दर्द होगा
पेड़ काटने और लकड़ी ढोने का काम
मेरी बहन से मत कराना
वह उस बोझ से दब जाएगी
रिश्तेदारों के घर ब्याह-शादियों पर उसे भेजना
उसे प्रोत्साहन देना, उसे उकसाना कि
वह अपने बालों को अच्छी तरह संवारे
यदि वह नाचना चाहे तो उसे
अपनी मरजी से नाचने का मौका देना।

एक गीत और है जो ऊपर दिए गीत का ही परिणाम लगता है। वधू अपने पति के घर चली जाती है। कुछ समय बाद वर-वधू के बीच यह वार्तालाप होता है :—

वधू झुंझला कर वर को सुनाती है :
मैं दिन-रात धान नहीं कूट सकती
मैं धान कूटने वाले परिवार से नहीं आई हूं
मैं दिन-रात इंधन के लिए पेड़ नहीं काट सकती
मैं लकड़हारों के परिवार से नहीं आई हूं
मैं दिन-रात कपड़े नहीं धोऊंगी
मैं धोबियों के परिवार से नहीं आई हूं
मैं दिन-रात डंगर नहीं चरा सकती
मैं ग्वालों के परिवार से नहीं आई हूं।

फिर संभवत: कुछ समय बाद दोनों का पारस्परित प्यार एक और वार्तालाप में अभिव्यक्त होता है।

वधू को उसकी इच्छा के विरुद्ध शादी के बंधन में बंधना पड़ता है। वर उसे लेने आया है। उसका धंधा है मछलियां पकड़ना। वधू माता-पिता के बिछुड़ने पर दुख प्रकट करती है। गीत में काव्यत्व है और वह करुणा से ओत-प्रोत है :—

जाल वाला मछुआ आया है
ओ मां, मैं चीखूंगी, मैं रोऊंगी
उसने इस घर में अपना जाल डाल दिया है
सभी मछलियां तितर-बितर हो गई हैं

सिर्फ मैं उसके जाल में फंस गई हूं
अब वह मुझे ले जाएगा ।

प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को छोड़ दिया है। हताश प्रेमिका अब एकांत में अपना समय बिताती है। प्रेमी उसे शांत करने और दोबारा उसका विश्वास प्राप्त करने के उद्देश्य से उसके पास आता है। वह झुंझला कर कहती है :

मैं यहां रो रही थी, तुम वहां मुस्करा रहे थे
मुझे छोड़ दो और यहां से चले जाओ
मैंने तुम्हें नहीं बुलाया है, मेहरबानी करके चले जाओ
अब तुम्हें इस घर में आने की जरूरत नहीं
जाओ, मैं तुम्हें यहां नहीं देखना चाहती
ओ बहरे, चले जाओ यहां से ।

नाराजगी का सारा तीखापन बहरा शब्द में निहित है।

माता-पिता के घर से लड़की की विदाई के सिलसिले में लोगों ने पौराणिक कहानियों का उपयोग करके अनेक आशु गीत बनाये हैं। रामायण की कहानी से अनेक गीत बने हैं। एक गीत यहां दिया जा रहा है। सीता के पिता राजा जनक बेटी को प्यार से पास बुलाते हैं और उसे सास-ससुर के हवाले कर देते हैं :—

जब तुम्हारा पति गुस्से में हो, तो कभी जवाब मत देना
हमेशा उसके साथ रहना
तुम्हारा अगर वह दास बन जाये तो गर्व मत करना
हमेशा उसके साथ रहना
श्री राम के मन की बात को समझना
भूल जाना हमें, छोड़ देना हमारी ममता को ।

यह कह कर जनक सीता को उन्हें सौंप देता है। वह अपनी बेटी का हाथ राम की मां रानी कौशल्या के हाथ में देता है और कहता है :—

"देवी, इसे अपनी सेवा का मौका दें
और सब के लिए इसकी सेवा प्राप्त करें
यदि कभी यह खेलने चली जाए
तो नरमी से इसे समझाना

प्यार से और समझा बुझा कर
इससे काम लेना
आज से यह तुम्हारी बेटी है
अब यह हमारी बेटी नहीं है
अपनी बेटी शांता को और सीता को
जो अब तुम्हारी बेटी है
एक जैसा प्यार देना

राजा जनक कौशल्या से फिर कहते हैं :—

रानी, मैंने इसे तुम्हें दे दिया है
इसे दूध से नहला देना
दूध से इसका पालन-पोषण करना
इसने चूल्हे पर दूध गरम करना भी नहीं सीखा है
इसे अपनी भूख का भी पता नहीं होता
ध्यान रखना कि यह
ठीक वक्त पर खाना खा लिया करे।

उसी समय सीता की सखियां उसे खेलने के लिए बुलाने आती हैं। जनक उनकी तरफ मुड़ कर कहता है :—

हमारी सीता अब हमारी नहीं रही जो तुम्हारे साथ खेलेगी
ओ मेरी बेटियो, तुम क्यों आयी हो उसे बुलाने
इस घर में खेल-खिलौने होंगे और खेल के लिए महल भी
लेकिन खेलने वाला अब नहीं होगा
कौन बनाएगा अब यहां खिलौनों के घर
कौन यहां गुड़ियों से खेला करेगा
कोई नहीं होगा यहां खेलने वाला
कोई खेलने वाला इस घर में नहीं होगा
हमारी सीता जो गुड़ियों के लिए गहनों की
मांग करती रहती थी, अब यहां नहीं होगी
वह खेलती थी, खाना पकाने के खेल
अब कौन वैसे खेल यहां खेलेगा।

खेल में खाना पका कर वह मुझे बुलाती थी
अब कोई नहीं बुलाएगा मुझे उस तरह
सुबह होते ही कौन उसे नाश्ते के लिए कहेगा ।
वह झूला झूलने के लिए सखियों को बुलाती थी
लेकिन अब खेलों में उसकी खुशी
बांटने वाला कोई नहीं होगा ।
उसने आंगन में फूलों के पौधे लगाए थे
और पौधों को पाला था
अब उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं होगा ।

सीता सास-ससुर के साथ चल पड़ती है । उसकी मां इस विदाई को सहन नहीं कर पाती । वह उसके लिए तड़प उठती है । उसे एक बार मुड़ कर देखने की विनती करते हुए वह कहती है :

सीते, एक बार मुड़ कर मेरी तरफ देख लो
तुम्हारी नजर हमारे लिए मोतियों और हीरों की तरह है
तुम्हारे सिर पर सजी
दुल्हन की माला को एक बार देख लेने दो
सीते, एक बार मुड़ कर मेरी तरफ देख लो
हमें नील मणियों के चांदोवे की रंगत एक बार देख लेने दो
ओ सीते, एक बार मेरी तरफ मुड़ कर देख तो सही ।

इस प्रकार के विदाई गीत अनेक हैं और लोगों ने सामाजिक उत्सवों पर गाने के लिए इन्हें गढ़ लिया है । गीतों में जन-साधारण के रस्मो-रिवाज की अभिव्यक्ति होती है न कि महाकाव्यों में आये रस्मो-रिवाज की । महाकाव्यों के ये पात्र परिवार का अंग होते हैं । उन्हें लगता है कि सीता उनकी बेटी है । गीतों के भावों में उनकी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है गीतों का केवल बाहरी ढांचा महाकाव्यों से लिया होता है, शेष सभी कुछ उनका अपना होता है ।

वनों में रहने वालों में अपनी रूमानियत होती है । युवक प्रेमी घाटियों, वादियों और प्राकृतिक परिवेश के अन्य स्थानों में मिलते हैं । नीचे चेंचु लोगों का एक गीत दिया गया है । चेंचु प्रेमी सुन्दर युवती के आगे अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए कहता है :—

प्रेमी : घाटियों में ओबूलेसू की पहाड़ियों के बीच
झाड़ियों पर झुकी हुई घास काटने वाली सुंदरी
मैं तुम्हारी चूड़ियों और कंगनों की मधुर ध्वनि
सुनता हूं, जब तुम दराती चलाती हो
तुम इसे थोड़ी देर के लिए बंद करो
और कपड़ा बिछा दो।

प्रेमिका : ओ मेरे प्यारे देवर
गिड़ेला गिरि की ढलानों पर
बैलों को चराने वाले
मुझे देख कर हंसो मत

इस तरह के शृंगारिक युगल-गीत असंख्य हैं और इनमें प्रेमोन्मत्त हृदयों की भरपूर अभिव्यक्ति हुई है। इनमें प्राकृतिक वातावरण का वर्णन होता है और ग्रामीण सादगी तथा सीधापन उनका आकर्षण होता है।

अनेक स्थलों में महाकाव्यों के प्रसंगों का वर्णन मिलता है। नीचे लिखी पंक्तियों में रामायण की बात को सार रूप में कहा गया है :—

रामैया ने इस दुनिया में अपने जीवन साथी
के साथ जन्म लिया है, इसके लिए उसने
बहुत कष्ट झेले हैं।

इस वर्णन का कुछ अंश दूसरे महाकाव्य "महाभारत" से लिया गया है। विराट देश की रानी सौरंध्री के भेष में रहने वाली द्रौपदी के मोहक रूप के विषय में सोचती है :—

यह रूप, यह लावण्य यह सुंदरता
इतना सब कुछ तुम कहां से लायी हो
तुम्हें देखने के बाद क्या पुरुष
शांत रह सकेंगे।

विवाह के बाद जब पति कारोबार के लिए या किसी जरूरी काम पर बाहर जाता है तो पत्नी बहुत अकेलापन महसूस करती है। पति की वापसी के लिए उसकी पीड़ा और तड़प तीव्र हो जाती है। उसके पास संदेश-वाहक भेज कर उसे कुछ परोक्ष संतोष

मिलता है। यहां एक गीत में गांव की एक स्त्री अपने देवर के हाथ पति के पास संदेश भेजती है। वह देवर से जिद् करती है कि वह जल्दी से जल्दी घर छोड़ कर उसके पति के पास चला जाये।

जल्दी जाओ देवर जी, जल्दी करो
चार में से तीन साल बीत गये
मुझे उसके दर्शन नहीं हुए
पांच फसलें कट गयी, पर
मैं उनको नहीं देख पायी
बहुत होंगे मायके के और दूसरे संबंधी
भाई भी हैं, दूसरे रिश्तेदार भी हैं
पर मुझे नहीं चाहिए वे सब, मैं अकेली हूं
जब तक स्वामी मेरे पास नहीं आते
धन दौलत बहुत, सब कुछ है मेरे पास
किंतु यह सब मेरे किस काम के
अगर मेरे प्राण-प्यारे पास नहीं हैं
मेरा हृदय अब और नहीं सह सकता
मैं एक पल भी यहां नहीं रह सकती।

पति से विलग पत्नी की विरह-व्यथा का गाथा सप्तशती में इस प्रकार वर्णन आता है :

तीन-5.

पति के घर से दूर चले जाने पर पत्नी खाना खाने से पहले कौवे के लिए रोटी का टुकड़ा बलि के रूप में रखती थी। एक दिन जब वह रोटी का टुकड़ा रखने लगी तो उसकी चूड़ी सरक कर नीचे आ गिरी और रोटी का टुकड़ा उसके अंदर आ गया। उस दिन कौवे ने रोटी का टुकड़ा नहीं खाया क्योंकि उसने सोचा कि रोटी के टुकड़े को घेरे हुए चूड़ी पक्षियों को पकड़ने का फंदा है।

तीन-36.

जब पति यात्रा पर जाने के लिए तैयार हुआ तो उसकी पत्नी की प्रिय दासी सखी ने उससे कहा :

हे युवक, यद्यपि प्रेम गहन राग से उत्पन्न हुआ है
वियोग की अवधि में यह उसी तरह सूख जायेगा
जिस तरह तुम्हारी अंजली में भरा हुआ जल ।

तीन-44.

प्रेमिका एकांत में पड़ी एक पत्र भेजने का प्रयास करती है । उसकी कांपती हुई अंगुलियों से लेखनी छूट जाती है । वह अपनी सखियों को बताती है कि उसके हाथ से लेखनी कुछ पंक्तियां लिखने के पहले ही छूट गयी ।

चार-7.

दासी अन्य सखियों को एकांतवास में पड़ी पत्नी की स्थिति के विषय में बतलाती है—'उसने वियोग के दिनों की गिनती अपने हाथों-पैरों की अंगुलियां गिन कर की । अब वह रो रही है कि बाकी दिनों की गिनती किस प्रकार करे ।'

गांव की स्त्रियों के इस प्रकार के वर्णन अनगिनत हैं । सभी वर्णन काव्यत्व से परिपूर्ण हैं । पत्नी अक्सर अपनी सास द्वारा पीड़ित होती है जिसे प्रायः झगड़ालू बताया गया है । पति भी परेशान करने वाला होता है । ऐसी स्थिति में पत्नी की करुण पुकार इस प्रकार होती :

मेरा पति शेर है
मेरी सास शेरनी है
मैं एक बछिया हूं ।

एक अन्य स्त्री जिसका पति उसकी उपेक्षा करता है, सास से शिकायत करती ह :

वह मेरी तरफ नहीं देखता
अपनी गर्दन दूसरी तरफ मोड़ लेता है
मेरी तरफ कभी नहीं देखता तुम्हारा हरजाई बेटा
क्या मैं तुम्हारे घर की कड़ियां गिनती रहूं
क्या मैं इस काम के लिए घर पर टिकी रहूं
क्या मैं नौकरानी हूं, तुम्हारे घर की, और बाहर की देखभाल के लिए
क्या उनकी देखभाल का काम ही करती रहूं

फिर वह ससुर से शिकायत करती है जो इस स्थिति को सुधारने में संभवत: असमर्थ होता है :—

ससुर जी, इसे छोड़ कर
मैं मायके चली जाऊंगी
मैं मायके चली जाऊंगी, ओ सास मेरी
मैं मायके चली जाऊंगी
मैं अपने माता-पिता के साथ रहूंगी
ससुर जी, तुम सब यहां रहो
मैं दाल-भात की चाह में यहां नहीं हूं
ओ सास जी, तुम्हीं यहां रहो
मैं यहां खत्म हो गयी, चुक गयी
मैं मर जाऊंगी, मर जाऊंगी यहां ।

यहां समृद्ध परिवार के घरेलू जीवन की एक झलक दी गयी है । दुल्हिन नये घर में आने के बाद अपने मायके नहीं गयी है । एक दिन उसे बहुत-सा भीगा अनाज चक्की में पीसना था और वह बहुत थक गयी। किंतु उसे अपनी सास की आज्ञा का पालन करना पड़ा । इस शारीरिक श्रम का भार सहने के लिए उसके पास पर्याप्त धैर्य था। इसी बीच उसका बड़ा भाई आया । उसने उसका उत्साह से स्वागत किया । उसकी आंखें आंसुओं से भर आयीं । दोनों के बीच वार्तालाप हुआ :

भाई

प्यारी बहन, तुम्हारी आंखों में आंसू क्यों हैं
तुम्हें क्या कष्ट है, क्या तकलीफ है यहां
अपने आंसू पोंछ लो
अपने घुंघराले बाल संवारो
बच्चे को बांहों में ले लो
सास-ससुर की आज्ञा लेकर
बैठो पालकी में
आज ही हम घर चले जायेंगे ।

बहन

लकड़ी की चौकी पर बैठी सासू जी
मेरा भाई मुझे लेने आया है
मुझे उसके साथ जाने की अनुमति दो।

सास

अनुमति मैं नही, तुम्हारे ससुर देंगे।

बहू

बढ़िया आराम कुर्सी पर बैठे ससुर जी,
मेरा भाई मुझे लेने आया है
इजाजत दो कि मैं उसके साथ जाऊं

बहू के घर के लोग टालमटोल वाला जवाब देते हैं। अंत में उसे पति की इजाजत मांगने को कहा जाता है। पत्नी के अनुनय से उसका हृदय पिघल जाता है और वह कहता है :—

अपने सारे गहने पहन लो
अपनी बढ़िया साड़ी पहन लो
अपने माता-पिता के घर जाकर
सकुशल लौट आओ

एक धोबिन अपने पति से लड़ी है और वह बेहूदगी की सीमा पार कर चुकी है। वे एक-दूसरे की कई बार पिटाई भी कर चुके हैं।

ओ लोगों मेरी बात सुनो और अपने कानों को सुख दो
उसने मुझे पान के पत्ते से मारा
मैंने दरवाज़े का तख्ता मारकर जवाब दिया
उसने मुझे पंखे से मारा
मैंने उस पर पत्थर फेंका
उसने मुझे कोमल पत्ते से पीटा
लेकिन मैंने तीन बार झाड़ू से उसकी पिटाई की।

ऐसा लगता है कि सीधे-सादे गांव के लोग उस सुख से अपरिचित नहीं हैं जो किसी को चोट पहुंचाकर प्राप्त होता है।

गाथा सप्तशती, चार-36 में हमें ऐसी उदार सास का उदाहरण मिलता है जो पुत्र के बाहर जाने पर बहू की सेवा करती है। सास उस बहू की रक्षा भी करती है और उसकी सेवा भी करती है जो पति की प्रतिक्षा में घुल रही है और बहुत अस्वस्थ हो गयी है। उसने घर का सारा काम-काज छोड़ दिया है और अब वह बिस्तर पर पड़ी अपनी बहू की सेवा में खड़ी है। उसकी जान बचाने का अर्थ है अपने बेटे की जान बचाना। हम सब तभी जीवित रह सकते हैं जब उसकी पत्नी जीवित रहेगी।

इनमें से अधिक लोग बहु-विवाह वाले समाज से संबंधित होते हैं। सौतिन-डाह हमेशा बना रहता है। अपने गीतों में वे पौराणिक पात्रों के बीच हुए झगड़ों केउदाहरण देते हैं। श्रीकृष्ण जिन्हें पुराणों में अनेक पत्नियों वाला कहा गया है, को कई बार अपनी पत्नियों को शांत करना पड़ता है। गर्वीली सत्यभामा अपनी बड़ी सौत रुक्मिणी से हमेशा डाह करती है। इस आशय का एक युगल गीत लोगों में इस प्रकार गाया जाता है। "सत्यभामा" कथा में गीत इस प्रकार चलता है :

सत्यभामा :

यह ठीक है, इसे यूं ही रहने दो रुक्मिणी।

रुक्मिणी :

ओ सत्या, तुम अपनी अंगुली मोड़ बैठी हो।

सत्यभामा :

क्या तुम मेरी बराबरी करती हो, रुक्मिणी ?

रुक्मिणी :

बराबरी क्या है, यह तुम्हें अभी सीखना है, अपने व्यवहार
को सुधारो। यह घमण्डी रुख छोड़ दो जो तुमने अपनाया है।
झगड़े में दूसरों को क्यों उलझाती हो।
दिल का ओछापन छोड़ दो
दूसरों से चिढ़ना छोड़ दो
झगड़ा क्यों बढ़ाती हो

तुमसे और तुम्हारे तेज तर्रार स्वभाव से
कौन डरता है ।

सत्यभामा :

अपनी जबान संभालो
ओ बड़ी बहन, मुझे उपदेश मत दो
अपना मुंह बंद रखो
रुक्मिणी, तुम चुड़ैल हो
तुम सच नहीं बोलतीं और
व्यर्थ दूसरों के आगे हाथ नचाती हो ।

रुक्मिणी :

तुम घृणा से मुंह टेढ़ा करके चिढाना बंद करो ।

उपर्युक्त पंक्तियों में हृदय की सरलता, मुखरता, ईर्ष्या तथा अन्य गुणों को देखा जा सकता है ।

एरुकुलों के गीतों में सत्यभामा का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

नाज-नखरा उसका सबसे बड़ा हथियार है और वह कोमल गोजंगी[1] पेड़ की तरह है ।

यक्षगान में पौराणिक पात्रों का इस प्रकार का चरित्र-चित्रण बड़े परिमाण में मिलता है ।

लोरियां और शिशुगीत

तेलुगू भाषा की मधुरता ने अनेक लोकसाहित्यविदों और भाषाविदों का ध्यान आकृष्ट किया है । इस भाषा में गाये जाने वाले भावपूर्ण गीत श्रोताओं को हमेशा लुभाते रहते हैं । इसकी लोरियां विशेष रूप से बहुत सुंदर हैं :

पालना झुलाओ बहना, पालना झुलाओ
गीत गाओ बहना, कि मुन्ने को नींद आये
विशाख सागर के तट की हवा चल रही है

---

1. स्क्रूपाइन

विजारम के तट पर जहाज ने लंगर डाला है
इस यात्री व्यापारी का नाम क्या है ?
जहां वह पहुंचा है उस पत्तन का नाम क्या है
यह व्यापारी मेरा मुन्ना है और पत्तन मेरा है
वह जहाज में मोती भर कर लाया है
छोटे दिये का उजियारा सारे घर में फैला है
भगवान के दीये चांद के उजियारे से सारी दुनिया जगमगाती है
नाखुन जितना दीया पहाड़ी की चोटी पर उजियारी फैलाता है
श्रीकृष्ण उजियारा हैं गोपालों के लिए
सिक्के जितनी बड़ी बड़ी बस्तियों से ऊंचे भवन उजियारे हैं
हमारा मुन्ना; हमारा राजकुमार हमारी आंखों का उजियारा है ।

इसी तरह छोटी मुन्नी के लिए लोरी है :—

सेम का फूल लाल है और तोते की चोंच भी लाल
इमली के अंकुर लाल हैं और पकता फल भी लाल
रक्किस[1] फल लाल है और तांबे का कटोरा भी लाल
राजा के महल में रखे माणिक भी लाल हैं
हमारी मुन्नी भी सब बच्चों में लाल है

मां अपने रोते हुए मुन्ने को सुलाने के लिए गाती है :—

मत रो, मेरे लाल, मेरे लाडले
रोने से आंखों में आंसू बहुत आयेंगे
मैं तुम्हारे आंसू नहीं देख सकती
इन सुनहरी आंखों से दूधिया आंसू क्यों नहीं निकलते

इसी प्रकार मां का आशीर्वाद इस प्रकार व्यक्त होता है :—

भगवान को, जो किले जितना बड़ा है
हम ढेर सारे फूल भेंट चढ़ाते हैं
मेरे लाडले तुम जुग-जुग जियो

1. थमेव जाति का फल

सिरजन हार के साथ संसार देखने के लिए।

वन-क्षेत्रों की सबर महिलाओं में गीत न केवल समय बिताने के लिए गाया जाता है बल्कि भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति के लिए गीत गाया जाता है। कोयल का गीत बड़े से बड़े उस्ताद के संगीत से बेहतर होता है। दूध पीते बच्चे का तुतलाना किसी बड़े विद्वान के भाषण से अधिक मधुर होता है। सबर लोक गीतों की स्थिति भी यही है।

यहां प्रस्तुत है एक भिक्षुक महिला द्वारा गाया गया गीत। इस की विषय-वस्तु है रामायण का उत्तर काण्ड। एक धोबिन के झूठे आरोप पर विश्वास करके श्री राम ने सीता को बनवास दे दिया था। उन्होंने अपनी पत्नी को घर से निकाल दिया यद्यपि वह गर्भवती थी। राजा के लिए कोई प्रायश्चित नहीं हैं क्योंकि उसे प्रजा की इच्छा के अनुसार आचरण करना पड़ता है। वनवास की अवधि में सीता ने एक कुटिया में लव और कुश नाम के दो जुड़वां बच्चों को जन्म दिया। जंगल के बीच एकांत में कष्ट भोगती हुई सीता झूला झुलाती हुई बच्चों को लोरी गाकर सुलाती है। गांव के लोगों के हृदय इस गीत से द्रवित हो उठते हैं और गीत गाने वाला भी उतना ही भावुक हो उठता है:

मत रो मेरे लाडलो, मेरे लव-कुश मत रो
मत रो, राजा श्री राम के बेटो
तुम रोओगे, तो कौन तुम्हें बाहों में लेकर बहलायेगा

गीत में बनवास में पड़ी निर्दोष सीता की भावनाओं का सजीव चित्रण हुआ है। उसका अस्थिर मन उस समय में पहुंच जाता है जब वह एक रानी थी। अब वह दूसरों की दया पर है। मासूम जुड़वां बच्चों की दशा को देखते हुए उसके कष्ट और भी असाध्य हो जाते हैं। उसके मन में यह आशा बनी रहती है कि एक दिन उसके बच्चों को राजा राम पहचान लेंगे :—

सोने के कुंडल और बहुमूल्य पालनों के साथ
छोटी चाची उर्मिला आयेगी
वह आयेगी तुम्हें कीमती उपहार देने
रेशमी वस्त्र और शुभ बाघनख लायेगी
तुम्हारी नानी, (धरती माता) तुमसे मिलने आयेगी
सोने के गहनों और हीरों के साथ

तुम्हारे चाचा लक्ष्मण तुम्हारा स्वागत करेंगे
ओ श्री राम के लाडलो, मत रो
तुम रोओगे तो यहां कौन है तुम्हारा
जो तुम्हें बाहों में लेकर बहलायेगा।

महाकाव्यों पर आधारित ये गीत भिखारियों, बनजारों और दूसरे ग्रामीण लोगों द्वारा प्रचारित होकर जन-जीवन में स्थायित्व प्राप्त कर चुके हैं। इसी प्रकार भगवान कृष्ण भी लोक साहित्य का प्रिय विषय है। लोक गीतों में श्री कृष्ण और वृंदावन की गोपियों के संबंधों का विशद-वर्णन होता है। महाकाव्य के लेखक कृष्णद्वैपायन ने भी महाभारत में दिव्य-शिशु से संबंधित घटनाओं का अलौकिक वर्णन किया है। गोपियां लोरी इस प्रकार गाती हैं :—

बालक को लोरी सुनाओं
यह बालक लक्ष्मी का पति है
इसके एक पैर में चक्र का निशान हैं
यह बालक वैदिक ऋचाओं में निपुण है
यह दिव्य बांसुरी वादक हैं
वैदिक मंत्रों का गायक है।

नीचे लिखी लोरियां घुमक्कड़ शिव के आस-पास चुनी गयी हैं। उसके शरीर पर वस्त्र नहीं होते हैं। आकाश और महाभूत ही उसके वस्त्र हैं। उसके भक्त उसे सुलाने के लिए लोरी गाते हैं :—

शंकर, हम तुम्हें लोरी गाकर सुलाते हैं
तुम एक कोमल शिशु हो
तुम ब्रह्माण्ड के प्रथम दिव्य नर्तक हो
तुम नटराज हो।
हे पंचानन देव, हम तुम्हें लोरी गाकर सुलाते हैं
तुम कैलाश के वासी हो
ओ मधुर कंठ वाले देव, सो जाओ
ओ वीर योद्धा देव सो जाओ
ओ पापियों का उद्धार करने वाले, सोजाओ
ओ सर्पों के आभूषण पहनने वाले सो जाओ

ओ हलाहल को पीने वाले
नीलकंठ सो जाओ।

शिशु-गीत

लोक गायकों के गीतों के भंडार में बहुत से ऐसे गीत भी होते हैं जिनका विषय महापुरुषों का जन्म होता है या जो इस प्रकार के विषय को लेकर शिशुओं के लिए रचे गये होते हैं। जन्म का वर्णन करने से पहले गर्भवती मां की भावनाओं का चित्रण किया जाता है। कृष्ण के जन्म से संबंधित गीत इस प्रकार हैं:

तुम रंगा, जो नीलवर्ण हो
तुम रंगा, जो कावेरी नदी के किनारे[1] बसते हो
ओ रंगा, मैं कैसे अकेली रह सकती हूं
तुम्हें छोड़ कर, मैं तुम्हें भूल नहीं सकती
तुम अति बलवान मामा कंस के वध के लिए
मानव रूप धरोगे
तुम देवकी के गर्भ में जन्म लेकर
श्री कृष्ण का रूप लोगे
रविवार, कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन
इस मर्त्य संसार में तुम अवतार लोगे
जन्म होते ही शिशु 'काव' 'काव' करके रोयेगा।

गीत में शिशु जन्म की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया गया है:
उसने मां से कहा, ओ मां,
तुम मुझे अपनी दुलारभरी बाहों में क्यों नहीं लेती?

मां:

ओ मेरे बच्चे मैं बहुत कमजोर और दुर्बल हो गयी हूं
मैं तुम्हें कैसे अपनी बाहों में उठाऊं
थोड़ी देर ठहरो मेरे लाल
उसने गंगा से प्रार्थना की,
और गंगा अपने पवित्र जल के साथ वहां आयी

---

(1) श्री रंगम, तमिलनाडु

उस पवित्र दिव्य जल में देवकी ने
स्नान करके अपने को पवित्र किया ।

शिशु:

मां, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं
अब तो मुझे अपनी बाहों में ले ले
मैं कोमल शिशु, मुझे इस तरह तुम कैसे छोड़ सकती हो ?

मां:

मेरे बच्चे, थोड़ी देर और धीरज रख, मेरे लिए
देवकी ने काम धेनु से प्रार्थना की
दूध की बौछार होने लगी
शिशु को दूध में प्रथम स्नान कराया गया
देवकी ने स्नान के बाद कपड़े पहने
शिशु-वस्त्र में लपेटकर शिशु को बिछौने में रखा गया
फिर देवकी ने बच्चे को अपनी बाहों में लिया
बाहों में लेकर
उसने बच्चे के सौंदर्य को निहारा

मां :

यह मेरे पति वासुदेव का पुत्र है
मेरा यह शिशु वैकुण्ठ का निवासी है
यह शरारती बालक माखन चोर है
और नंद की गऊएं चराने वाला है
वह सीता का पति, श्री रामचंद्र है
इसके सिर पर दिव्य मणि है
इसकी जीभ पर तारक चिह्न है
उसके दांतों में पारस पत्थर है
उसके कंधों पर शंख-चक्र के निशान हैं
ओ बालक, भगवान ने तुम्हारा यह रूप
गढ़ने के लिए कितना समय लिया
वह बहुत देर तक रुका होगा ।

इस गीत की होड़ में एक और गीत गाया जाता है जिसमें भगवान शिव की धर्मपत्नी पार्वती के जन्म का वर्णन है। वह राजा हिमवान और रानी मेना की पुत्री है।

हिमवान की पत्नी मेना में गर्भ के लक्षण प्रकट हुए
मेना की क्षीण काया और थकान को देखकर
उसकी दासी ने कहा :
ओ प्यारी, यहां आओ, कुछ भोजन कर लो
बताओ, तुम्हें क्या अच्छा लगता है

क्या खाने को तुम्हारी इच्छा है
नहीं, तुम्हें खाने से इन्कार नहीं करना चाहिए
सुनो प्यारी, यह पकवान बनाये गये हैं
लाल कपिला गाय के दूध से
दूध को उबाल कर लाल किया गया है

इसे चखो, इसे पीने का मजा लो।
किंतु मेना में भोजन लेने की शक्ति नहीं थी
वह बहुत थकी थी, उसके लिए एकांत की घड़ी
निकट आ गयी थी।
उसने अपनी पीड़ा को भली प्रकार छिपा लिया
वह चुप थी, उसे कोई शिकायत नहीं थी
लेकिन वह दासी की आंखों पर पट्टी नहीं बांध सकती थी
दासी उसकी दशा को समझ रही थी।

मेना ने कहा :

मेरे कष्टों की बात मेरे पति से कहो
देवताओं से प्रार्थना करो, उनकी पूजा का व्रत लो
नारी जीवन में प्रसूति का यह एकांत खतरनाक घड़ी होती है
बूढ़ी सयानी औरतों की सलाह लो।

दासियां चिंतित हुईं। कुछ न कर पाने के कारण उन्हें भी कष्ट हुआ। अंत में मेना ने पार्वती को जन्म दिया। बच्ची बहुत सुंदर थी।

उसकी आंखें कमल पंखुड़ियों को शरमाती थी
उसके बालों के पेच बहुत सुन्दर थे
मधु मक्खियों के छत्ते की तरह
ओ देव, अलौकिक तेज से भरी उसकी दृष्टि
संसार को सुख देने वाली थी
उसके मुखड़े को देखो, उसकी आंखों को देखो
वह कामदेव की निधि है
सुनो, वह इस योग्य है कि
भगवान शिव की पत्नी बने ।

गाथा सप्तशती में जो ईसा की प्रथम शताब्दी के गांव के समग्र सामाजिक जीवन का वर्णन करती है, यह कविता आती है :

दो-23

रानी प्रसव पीड़ा में है । दासियों ने उसके सामने पति की चर्चा की । अपने इस असह्य कष्ट में वह बोली : मेरे सामने उसका नाम भी मत लो ।

तीन-90

वह गर्भवती है । वह असह्य अवस्था में कष्ट झेल रही है । उसने अपनी फूटती हुई इच्छाओं को दबा दिया है । पड़ोस की स्त्रियों की निंदा को उसने पी डाला है ।

एक दूसरी गर्भवती है । दासियां उससे पूछती हैं कि उसकी इच्छा क्या है ? एकांत में पड़ी युवती उनसे कहती है : मुझे किसी चीज़ की जरूरत नहीं । मुझे बस एक गिलास पानी पीने को दो ।

मृत्यु

हिंदुओं की धार्मिक पुस्तकों के अनुसार मृत्यु को सोलहवां और अंतिम संसार कहा जाता है । द्विजों में अन्य वर्गों की तुलना में अधिक संस्कार होते हैं । ये संस्कार आत्मा विषयक धार्मिक विश्वासों के अनुसार (जिसे कि वैष्णव, शैव, शाक्त, लिंगायत आदि) भिन्न-भिन्न होते हैं । जिन्हें यज्ञोपवीत नहीं पहनाया गया है या जो अविवाहित हैं, उन्हें सामान्यतया दफनाया जाता है और यज्ञोपवीत-धारियों तथा विवाहितों को चिता में जलाया जाता है । मृत व्यक्ति के निकट संबंधी का अशौच काल भी जाति और धर्म के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है ।

वीरशैव व्यक्ति के मृत शरीर को समाधि की मुद्रा में दफनाया जाता है जबकि अन्य मृतकों को लिटा कर ले जाया जाता है। कुछ वीरशैवों में अशौच भी नहीं माना जाता। ब्राह्मण और क्षत्रियों के कर्म-काण्ड जटिल होते हैं किंतु अन्य जातियों में ये सरल होते हैं। ब्राह्मण के मृत शरीर को श्मशान में बिना किसी तड़क-भड़क या आडंबर के ले जाया जाता है जबकि अन्य जातियों में मृत व्यक्ति को धूम-धाम से बैंड-बाजों के साथ श्मशान में ले जाया जाता है। वे अर्थी पर से फूल-चावल, सिक्के और तांबा फेंकते हैं ताकि भिखारी तथा दूसरे जरूरतमंद लोग उन्हें उठा सकें। यदि मृत व्यक्ति शराब, तंबाकू या सुंघनी का आदी हो तो उसकी कब्र या चिता के पास ये चीजें भी रखी जाती हैं। कभी-कभी उसके धंधे के औजार जैसे, तीर-कमान, दरांती, कुल्हाड़ी आदि भी मृत व्यक्ति के शरीर के साथ रखे जाते हैं।

द्विजों में एक वर्ष तक मासिक श्राद्ध और अन्य अनुष्ठान होते हैं किंतु अन्य जातियों में नहीं होते। द्विज मृत व्यक्ति की मरण तिथि पर वार्षिक श्राद्ध करते हैं किंतु अन्य जातियां केवल पितृ अमावस्या के दिन, अर्थात् आश्विन मास की अमावस्या को ही श्राद्ध करते हैं जब वे अपने कुल पुरोहित को दान देते हैं। यदि मृत व्यक्ति की अविवाहित पुत्री या पुत्र हो तो उसके उत्तराधिकारी उसकी मृत्यु के एक वर्ष के भीतर इस विश्वास के साथ उनका विवाह करते हैं कि उसका फल दिवंगत आत्मा को मिलेगा।

5

मेले और त्योहार

यद्यपि आंध्र के अनेक त्योहार दूसरे क्षेत्रों के समान हैं परंतु फिर भी उनकी अपनी वशिष्टता और आकर्षण हैं। आंध्र के प्रमुख त्योहारों के परिचय से पहले मैं तेलुगु के चंद्रमासों और तदनुरूप अंग्रेजी महीनों की निम्नलिखित जानकारी देना आवश्यक समझता हूं :

तेलुगु मास	अंग्रेजी मास
चैत्र	मार्च-अप्रैल
वैशाख	अप्रैल-मई
जेष्ठ	मई-जून
आषाढ़	जून-जुलाई
श्रावण	जुलाई-अगस्त
भाद्रपद	अगस्त-सितंबर
अश्वयुज	सितंबर-अक्तूबर
कार्तिक	अक्तूबर-नवंबर
मार्गशिरा	नवंबर-दिसम्बर
पुष्य	दिसंबर-जनवरी
माघ	जनवरी-फरवरी
फाल्गुन	फरवरी-मार्च

हिन्दुओं के सामान्य त्योहार

उगादि : यह तेलुगु नव वर्ष है जो चैत्र शुदी पड़वा अर्थात् चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन मनाया जाता है। यह त्योहार आंध्र, कन्नड़ और महाराष्ट्र के लोगों में समान रूप से मनाया जाता है। यह बहुत खुशी का दिन होता है। लोगों का दृढ़ विश्वास

है कि इस दिन जो कुछ घटता है, वह सारे वर्ष की घटनाओं का संकेत देता है। घर का प्रत्येक व्यक्ति तड़के उठकर तेल-स्नान करता है और नये कपड़े पहनता है। घर के दरवाजों पर आम के पत्तों के तोरण बांधे जाते हैं। आंगन को गाय के गोबर से लीपा जाता है और उस पर रंगीली बनायी जाती है। पूरणपोली (भक्ष्य) इस दिन का विशेष मीठा पकवान होता है। एक विशेष व्यंजन डगादि पच्चाडि (चटनी) भी इस दिन अवश्य बनती है। ताजी इमली, पानी, गुड़, आम आदि को अमर गाध (मारगोसा) के ताजा फूलों में मिलाकर डगादि पच्चाडि बनायी जाती है। इन सब चीजों को कोरे मिट्टी के बर्तन में डाला जाता है और बर्तन को सजाकर कुल देवता के आगे रखा जाता है। पूजा के बाद प्रत्येक व्यक्ति चटनी का प्रसाद लेता है और सब के साथ भोजन करने जाता है। इस चटनी में अमरगाछ के कड़वे फूलों और गुड़ के मिश्रण का अर्थ यह है कि जीवन भी दुख और सुख का मिश्रण है। स्त्री-पुरुष इस दिन खेल-कूद, मुर्गों की लड़ाई और दूसरी प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं और लड़के-लड़कियां झूला झूलने की अनौपचारिक होड़ में आनंद लेते हैं।

शाम को लोग मंदिर में या गांव के किसी सार्वजनिक स्थान पर एकत्र होते हैं। गांव का पुरोहित नये पंचांग की पूजा करता है। इसके बाद वह वायु, वर्षा, फसल, पशु, धन और मनुष्यों का नया वर्ष-फल बताता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी राशि के अनुसार अपने वार्षिक भविष्य को जानने के लिए उत्सुक रहता है। शहरों और कस्बों में कवि-सम्मेलन या संगीत-गोष्ठियां आयोजित की जाती हैं।

श्रीरामनवमी : यह त्योहार चैत्र मास, शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन पड़ता है। श्रीराम जो आदर्श राजा थे और विष्णु के अवतार थे, इस दिन पैदा हुए थे। उनकी पत्नी सीता की, जो नारी धर्म की प्रतीक थी और हनुमान की जो निष्ठावान सेवक और श्रीराम के आदर्श भक्त थे, इस दिन पूजा की जाती है। श्रीराम के मंदिरों में तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों पर राम-विवाह और उनके राज्याभिषेक को पूरी धूम-धाम से मनाया जाता है। सभी हिंदू इस उत्सव में भाग लेते हैं। पानकम (गुड़ का पानी और मसाले मिलाकर) तथा वडपप्पू (भीगी दालें) बांटे जाते हैं। तटवर्ती आंध्र में रामनवमी का त्योहार बड़े ठाठ-बाट से मनाया जाता है। बड़े-बड़े पंडाल बनाये जाते हैं और नौ से पंद्रह दिन तक हरिकथा, पुराणकाल क्षेपम (पुराण-कथा), भजन, रामायण-पारायण आदि का आयोजन किया जाता है। खंमम जिले में भद्राचलम् इस अवसर का सबसे बड़ा तीर्थ स्थान है। ऐसा माना जाता है कि राम-लक्ष्मण और सीता ने अपने बनवास का कुछ समय यहां बिताया था। **कंचेरला गोपन्न** ने, जो रामदास के नाम से विख्यात हैं और जो राम के बड़े भक्त थे, भद्राचलम् के मंदिर बनवाये और

राम के भक्ति-पदों की रचना की थी। लोक-गीतों में उनके द्वारा रचे गये भक्ति-पद बहुत लोकप्रिय हैं।

एरुवाक पूर्णिमा : यह एक विशेष त्योहार है जिसे सब गांव वाले मानते हैं लेकिन विशेष तौर पर यह किसानों का त्योहार है। यह आषाढ़ महीने की पूर्णिमा के दिन होता है। किसान हल, जुए और बैलों की हल्दी-कुंकुम से पूजा करते हैं। घर पर या खेतों पर बैलों तथा जुए के पास नारियल तोड़े जाते हैं। इस दिन किसान खेत में हल के नौ-दस फेरे लगाकर वार्षिक जुताई का शुभारंभ करते हैं क्योंकि यह शुभ दिन वर्षा लाने वाला माना जाता है। वे इस दिन पायसम (एक मीठा पकवान) भी बनाते हैं और अपने बच्चों तथा रिश्तेदारों के साथ मिल बांट कर खाते हैं। कुछ क्षेत्रों में किसान बैलों की पूजा भी करते हैं। वे पशुओं को नहलाते हैं, उनकी मालिश करते हैं, उनके खुरों और सींगों में तेल मल कर विभिन्न रंगों से उन्हें चित्रित करते हैं और उन्हें पुलगम (चावल, हरे चने की दाल और तिल को मिला कर पकाया हुआ खाद्य) देते हैं। उनके शरीर को भी विभिन्न रंगों के दायरों और डिजाइनों से चित्रित किया जाता है। उनके गले और सींगों में छोटी-छोटी घंटियां बांधी जाती हैं और फिर उन्हें खुली जगह पर दौड़ने-भागने के लिए छोड़ दिया जाता है। गांव के द्वार पर सजे तोरण से होकर जब पशु निकल जाते हैं तो किसान तोरण की एक लकड़ी अपने घर ले जाते हैं। इस लकड़ी को अगले साल के लिए तावीज की तरह रखा जाता है। बच्चे एक सप्ताह पहले ही बीज इकट्ठे करते हैं और उन्हें मंदिर के कोनों में बो दिया जाता है। त्योहार के दिन तक बीजों में से पौधे फूट आते हैं और इनमें से कुछ पौधों को किसान अपने घरों में ले जाकर अनाज के भंडारों में रखते हैं ताकि अगले वर्ष अच्छी फसल हो। यह त्योहार किसानों के लिए बड़े महत्त्व का होता है। रंग-बिरंगे कपड़े पहने लोगों और विविध रंगों से चित्रित पशुओं के कारण उस दिन गांव रंगों और ग्रामीण वेष-भूषा का अनोखा शोभा-स्थल बन जाता है।

नागला चविति—यह त्योहार श्रावण या कार्तिक मास के शुक्ल मास की चतुर्थी को मनाया जाता है। यह सर्पपूजा का प्रागैतिहासिक त्योहार है जो सारे आंध्र प्रदेश में मनाया जाता है। बौद्ध ग्रंथों तथा अन्य अभिलेखों में इस बात का उल्लेख है कि किसी समय नाग जाति इस प्रदेश में रहती थी जिसे नागभूमि कहा जाता था। आंध्र के प्रत्येक गांव में पत्थर या लकड़ी पर खुदी हुई नाग की मूर्ति मिलती है। साधारणतया, स्त्रियां इस दिन नाग देवता को प्रसन्न करने के लिए व्रत रखती हैं और उसे ताजा, कच्चा गाय का दूध चढ़ाती हैं। कई परिवारों में अपनी बांबियां हैं जिन्हें वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी पूजते आये हैं। नाग देवता की आंखों और फन की रजत-प्रतिमाएं बांबी पर रखी

जाती हैं और नारियल तोड़ा जाता है। कुछ घरों में नाग देवता की सोने या चांदी की प्रतिमाएं भी हैं जिन्हें वे कुल-देवता की मूर्तियों के पास रखकर रोज पूजते हैं। इस दिन के विशेष पकवान हैं **चलिमेडि** (चावल का आटा, तिल, नारियल को गुड़ में पकाया हुआ) **पानकम** (गुड़ का शरबत) और **वडपप्पू** (भीगे चने आदि)। नाग देवता से परिवार और बच्चों की रक्षा विशेषकर सर्पदंश से रक्षा के लिए प्रार्थना करने के बाद लोग बांबी की मिट्टी को आंखों और कानों में छुलाते हैं। तेलुगु में नाग देवता की प्रशस्ति में अनेक लोक गीत हैं।

वरलक्ष्मी व्रतम् : यह त्यौहार द्विज वर्णों में (ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य) विवाहित स्त्रियों द्वारा श्रावण मास के हर सोमवार और शुक्रवार को मानाया जाता है। कुछ संपन्न शूद्र भी इसे मनाते हैं। यह व्रत परिवार की समृद्धि और सुयोग्य संतान के उद्देश्य से लक्ष्मी और पार्वती को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। फूल, हल्दी, कुंकुम, नारियल और नौ प्रकार के व्यंजनों से देवियों की पूजा की जाती है। पूजा करने वाली हाथ में कंकणम् (रंगीन धागा) बांधती हैं। सुहागिनों को जिन्हें (**मुत्तैदुवस**) कहा जाता है; घर पर बुलाया जाता है और उन्हें पान-सुपारी (तांबूलम्) और फूल दिए जाते हैं। **ब्राह्मण** स्त्री को पान-सुपारी, फूल-फल, नकद दक्षिणा, नये कपड़े और नौ प्रकार के व्यंजन नेग (**वायनम्**) के रूप में दिए जाते हैं। सभी नव-विवाहित स्त्रियां इस व्रत को रखती हैं और श्रावण के हर सोमवार और शुक्रवार को नयी साड़ी पहनती है।

श्रीकृष्णाष्टमी : यह भगवान श्रीकृष्ण का जन्म दिन है जो श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। रामनवमी की तरह यह त्यौहार भी सारे भारत में हिंदुओं द्वारा मनाया जाता है लेकिन वैष्णवों का यह बहुत महत्वपूर्ण त्यौहार है। वीरशैव इस त्यौहार को नहीं मानते हैं। इस दिन वैष्णव मंदिरों को, विशेषकर कृष्ण, केशव, वेणु गोपाल आदि के मंदिरों को खूब सजाया जाता है और पूजा की जाती है। देव-प्रतिमा को एक जुलूस में गलियों में घुमाया जाता है और भजन मंडलियों तथा बाजों वाले जुलूस के साथ होते हैं। **पुलिहोरा** (चावल और इमली) तथा दध्योदनम् (चावल-दही) उस दिन के विशेष व्यंजन होते हैं। **कायम** (प्रसव के बाद महिलाओं को दिया जाने वाला व्यंजन) भी इस दिन का विशेष व्यंजन है। यह श्रीकृष्ण को जन्म देने वाली माता देवकी की भेंट के रूप में होता है। छींका (अटलू) जिसमें दूध-दही का मटका रखा जाता है, इसदिन खुशी और उल्लास को स्रोत होता है। यह गोकुल के ग्वालों के साथ श्रीकृष्ण द्वारा दूध-दही और मक्खन की चोरी की याद दिलाता है। सड़क के दोनों ओर दो खंभे गाड़े जाते हैं, आर-पार एक बांस बांधा जाता है और बीच में रस्सी के साथ घिरनी बांध दी जाती है। रस्सी के एक किनारे से बांस की एक टोकरी बांध दी जाती है और उसमें नारियल और कुछ रुपये रख दिये जाते हैं। रंगीन कपड़े और मक्के की बालियों से

सजायी गयी इस टोकरी को ऊपर-नीचे किया जाता है और प्रतियोगियों को लुभाया जाता है जो उसमें रखी चीजों को लेने की कोशिश करते हैं। जब उसे पकड़ने लगते हैं तो छीके को खींच कर उनके मुंह पर पानी गिरा दिया जाता है। यह खेल प्रायः हर उस गली में किया जाता है जिसमें से होकर भगवान कृष्ण की सवारी निकलती है।

विनायक चविति यह भी हिंदुओं का आम त्योहार है जो भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को मनाया जाता है। शिव-पार्वती के पुत्र गजानन विनायक या गणेश की पूजा किए बिना कोई भी अनुष्ठान प्रारंभ नहीं होता। वह चूहे की सवारी करता है और धर्मात्माओं की विघ्न-बाधाओं को दूर करने वाला तथा बुद्धि और सफलता देने वाला है। गांवों में स्वर्णकार गणेश की मिट्टी की मूर्तियां बनाते है। शहरों और कस्बों में विनायक की रंग-बिरंगी मूर्तियां विभिन्न आकारों में मिलती हैं। परिवार के सभी सदस्य तेल-स्नान करते हैं और घरों को वंदनवार एवं रंगोली से सजाया जाता है। गणेश की प्रतिमा को विभिन्न फूल-पत्तों, फलों और अनाज से पूजा जाता है। कारीगर, शिल्पी और विभिन्न काम-धंधों में लगे लोग अपने-अपने औजारों की पूजा करते हैं। स्कूल जाने वाले बच्चे अपने स्लेट-बस्तों को चंदन-कुंकुम लगाकर विनायक की प्रतिमा के पास रखते हैं।

शहरों और कस्बों में यह त्योहार भजन तथा खेल-कूद के कार्यक्रमों के साथ नौ दिन तक मनाया जाता है। विशेष व्यंजन **उंडरालू और कुडुमलु** (पानी में उबले हुए चावल के आटे के बिना नमक-मिर्च के लड्डू) जो भगवान विनायक तथा उनके वाहन, मूषक के प्रिय व्यंजन कहे जाते हैं और पायसम् नैवैद्य के रूप में चढ़ाये जाते हैं। घर के द्वार और फर्श पर लाल और सफेद रंग के दो वृत्त बनाये जाते हैं जो विनायक के पैरों पर चिह्न होते हैं। जब तक विनायक की पूजा समाप्त करके लोग प्रसाद ग्रहण नहीं कर लेते, किसी भी व्यक्ति को चाय अथवा काफी पीने की अनुमति नही होती। अगले दिन या शहरों तथा कस्बों में नवें दिन प्रतिमा को बाजों-गाजों के साथ जुलूस में नदी, तालाब, कुएं, आदि के किनारे लाया जाता है और वहां पूजा करने के बाद उसे जल-प्रवाहित कर दिया जाता है। कुछ लोग प्रतिमा को घर के पिछवाड़े लता के नीचे मिट्टी में रख देते हैं ताकि जब पेड़ या लता को रोज पानी दिया जाये तो प्रतिमा उसमें गल जाये। गणेश चतुर्थी के दिन लोग चंद्रमा को नहीं देखते क्योंकि ऐसा माना जाता है कि ऐसा करने वालों को झूठे आरोप का शिकार होना पड़ता है। कहा जाता है कि भगवान कृष्ण ने दूध पीते समय बर्तन में परछाई देखी थी जिसके कारण उन पर सामंत मणि को प्राप्त करने के लिए शत्रजित की हत्या का दोष लगा था। चतुर्थी के दिन चंद्र-दर्शन के कुप्रभाव से बचने के लिए लोग महाभागवत पुराण के सामंतोपाख्यान को पढ़ते और सुनते हैं। विश्वकसेन को सभी प्रयोजनों के लिए विनायक का प्रतिरूप माना

जाता है और कट्टर वैष्णव विनायक के स्थान पर उसकी पूजा करते हैं।

पितृ अमावस्या या महालय अमावस्या : यह त्योहार भाद्रपद मास की अमावस्या के दिन मनाया जाता है जब सूर्य, चंद्रमा के योग में कन्या राशि में होता है। यह पितरों अर्थात् मृत पूर्वजों के श्राद्ध के लिए बहुत शुभ दिन माना जाता है। पितृ पक्ष (अमावस्या से पहले के पंद्रह दिन) को पितर-पूजा के लिए पवित्र माना जाता है।

सम्पन्न लोग पवित्र नदियों पर (जैसे उत्तर में गंगा और दक्षिण में कावेरी और आंध्र में गोदावरी तथा कृष्णा) पितरों का श्राद्ध और पिंडदान करते हैं यद्यपि सभी हिंदू इस पक्ष को शुभ मानते हैं, किंतु द्विज वर्ण, विशेषकर ब्राह्मण, अनुष्ठानों को धार्मिक पुस्तकों में दिये गये नियमों के अनुसार बड़े विस्तार से करते हैं। "निम्न" जाति के लोग, विशेषकर गरीब लोग स्वयं पकाया हुआ (**साहित्यम् या स्वायंपाकम्**) एक दिन का भोजन पितरों के नाम से कुल-पुरोहित को देकर संतोष कर लेते हैं। खाद्य पदार्थ और व्यंजन परिवार के साधनों के अनुसार तैयार किये जाते हैं। मांसाहारी पितरों की तुष्टि के लिए मद्यपान करते हैं और मांस खाते हैं।

दशहरा : यह त्योहार भी सारे भारत में, गरीब-अमीर सबके द्वारा अपने परिवार की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के अनुसार मनाया जाता है। यही आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को पड़ता है। इससे पहले के नौ दिन देवी नवरात्र कहे जाते हैं जिनमें दुर्गा की पूजा की जाती है। आठ दिन तक दक्षिणाचार और वामाचार देवी भक्तों द्वारा दुर्गा की पूजा की जाती है। दसवें दिन दशहरा या विजय दशमी मनायी जाती है। घरों की साफ-सफाई, तेल-स्नान और नये वस्त्र पहनने के अतिरिक्त इस दिन क्षत्रिय बंदूक, तलवार आदि खानदानी शस्त्रों की किसान हल और कुदाली आदि की, व्यापारी बाटों की और दूसरे काम-धंधे वाले अपने औजारों की पूजा करते हैं। पूजा के बाद प्रीति भोज होता है। गैर-ब्राह्मणों के लिए यह बहुत बड़ा त्योहार होता है और अब वे मद्यपान करते हैं और मांस खाते हैं। हर्ष-उल्लास के बीच कभी-कभी अप्रिय घटनाएं भी हो जाती हैं क्योंकि मद्यपान उत्सव का लगभग अनिवार्य अंग बन गया है। इसके परिणामस्वरूप पुराने झगड़े ताजा हो जाते हैं और आपस में खूब बकझक होती है झगड़ा करने वाले लोगों को आस-पास खड़े व्यक्ति और संबंधी और शराब पिलाकर शांत करते हैं ताकि उन्हें नींद आ जाये।

शाम के समय सभी गांव वाले गांव के बीच जमा होते हैं। यहां देवी-देवताओं की पूजा के लिए भेड़-बकरी आदि की बलि दी जाती है। कभी-कभी नारियल तोड़ा जाता है या जानवरों की बलि के स्थान पर कद्दू काटा जाता है। बलि-रक्त से लोग माथे पर तिलक करते हैं ताकि रोग-व्याधियों से रक्षा हो। इसके बाद एक जुलूस की शक्ल में निकलते हैं। जुलूस में ढोल, बंदूक, बाजी, सिंह-नृत्य, व्यायाम, तलवार के खेल

आदि का प्रदर्शन होता है। जुलूस गांव के बाहर **जम्मि पेड़** (संस्कृत में सामी) के पास पहुंचता है। यहां गांव का पुरोहित जम्मि पेड़ की पूजा करता है। गांव का करणम् अर्थात् पटवारी या पटेल एक दस्तावेज लिखता है जिसे **जम्मि किंडि व्रतालु** अर्थात् जम्मि पेड़ के नीचे की लिखत कहा जाता है। उसमें यह बताता है कि उसके अधिकार क्षेत्र का अमुक भाग खुशहाल है। इस लिखत (**आमिया**) को पेड़ से चिपका दिया जाता है। फिर कागज़ पर बंदूक से गोली जलाई जाती है और पुरोहित कुछ पत्ते तोड़ कर बुजुर्ग लोगों में बांट देता है। वहां जमा हुए लोग भी पत्ते तोड़ते हैं और फिर सब अपने-अपने घरों को चल देते हैं। गृहणियां अपने पतियों और परिवार के दूसरे सदस्यों का मंगल आरती से स्वागत करती हैं। सामी के पत्तों को संबंधियों, बच्चों और व मित्रों में बांटा जाता है और उनकी सुख-समृद्धि की कामना की जाती है। कुछ स्थानों पर सामी-पत्तों के साथ **गारा** के पत्ते भी वितरित किये जाते हैं। लोग खान-पान का भरपूर आनंद लेते हैं और शाम के भोजन के साथ उत्सव समाप्त हो जाता है।

दशहरा के उत्सव में स्थानीय भिन्नताएं पायी जाती हैं। शाम को सामी पेड़ के जुलूस के अतिरिक्त कुछ क्षेत्रों में सुबह भी एक जुलूस निकलता है जिसे **पारूवेटा** कहा जाता है। इसमें उस स्थान की सभी मूर्तियों को एक ही जुलूस में ले जाया जाता है। शहरों और कस्बों में कुछ लोग **बोम्बला कोलुवु** (कठपुतली या खिलौनों के प्रदर्शन) का आयोजन दशहरे से पहले दस दिनों में करते हैं।

दशहरे की एक महत्वपूर्ण विशेषता और भी है किंतु वह अब गांवों में सरकारी स्कूलों की स्थापना के कारण धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। प्राइवेट स्कूल-अध्यापक की देख-रेख में स्कूलों के बच्चे दशहरे के गीत और कविताएं गाते हुए घर-घर जाते थे अध्यापक के लिए पैसे तथा अपने लिए गुड़, खाने की चीजें, तली हुई दालें आदि मांग कर लाते थे। लड़के अपने-अपने परिवार की हैसियत के अनुसार नये कपड़े पहनते थे और रंगीन कागजों से सजे तीर-कमान और झंडे लेकर निकलते थे। वे कुंकुम, **बुक्का**, (फूलों का केशर या विभिन्न पदार्थों से बना सुगंधित पाऊडर) और गुलाल हर परिवार के मुखिया पर डालते थे जो पैसे और खाद्य-पदार्थ दान करता था। यह सिलसिला दशहरे से एक दिन पहले महानवमी तक नौ दिन तक चलता था। कुछ स्थानों में लोग राणा प्रताप, शिवाजी, महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस आदि के भेष या भारत माता, पौराणिक देवी-देवताओं का भेष धारण करके शाम को सामी वृक्ष के जुलूस में शामिल होते थे।

दीपावली : दीपावली या नरक चतुर्दशी एक महत्वपूर्ण त्योहार है जो सितंबर-अक्तूबर में कृष्णपक्ष के चौदहवें दिन मनाया जाता है। यह कहा जाता है कि भगवान कृष्ण अपनी पत्नी सत्यभामा के साथ नरकासुर को मारकर इस दिन सुबह लौटे थे।

भगवान कृष्ण की विजय की इस याद में लोग उस दिन सवेरे तड़के उठकर तेल-स्नान करते हैं, नये कपड़े पहन कर मंगल आरती करते हैं और इस उत्सव को पटाखे, आतिशबाजी तथा अन्य प्रकार के आमोद-प्रमोद से मनाते हैं।

त्योहार की तैयारियां काफी पहले कर ली जाती हैं। मकानों और दुकानों की पुताई आदि करके उन्हें रंगों से सजाया जाता है। आम के पत्तों के बंदनवार और केले तथा नारियल के पत्तों द्वारा बनाये जाते हैं। बेटियों और दामादों को घर पर आमंत्रित किया जाता है तथा उन्हें नये कपड़े और दूसरे उपहार दिए जाते हैं। दीपावली के विशेष व्यंजन हैं **आतिरसालु** या **आरिसेलु** (गुड़ से बनी मिठाई) और सेवैंयां। रात क समय छोटे-बड़े सभी पटाखे चलाकर और दीप जलाकर आनंदित होते हैं।

2. घर के बरामदे और अहाते की दीवारों पर तेल के दीये जलाये जाते हैं। लड़के-लड़कियां विभिन्न प्रकार के पटाखों और आतिशबाजियों से खेलने का मजा लेते हैं। व्यापारी अमावस्या के दिन घनलक्ष्मी की पूजा करते हैं। कुछ क्षेत्रों में केदारेश्वर व्रत भी किया जाता है कहीं-कहीं नरकासुर और श्रीकृष्ण के बीच हुए युद्ध का अभिनय किया जाता है जिसमें दोनों दल एक दूसरे पर **जिल्लियां** (एक किस्म के पटाखे) फेंकते हैं।

संक्रांति: पुष्य (पौष) मास में 13 से 15 जनवरी के बीच मकर संक्रांति या उत्तरायण संक्रांति के दिन, जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है, यह त्योहार मनाया जाता है। आंध्र का यह सबसे बड़ा त्योहार है चूंकि इस दिन उत्तरायण का प्रारंभ होता है, यह सभी हिंदुओं के लिए बहुत पवित्र दिन होता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस दिन स्वर्ग के द्वार खोल दिये जाते हैं। दक्षिण भारत में इसे पोंगल का त्योहार कहते हैं। यह त्योहार कृषि का महत्व प्रतिपादित करता है इसलिए इसे राष्ट्रीय त्योहार कहा जा सकता है।

यह सही मायनों में फसल का त्योहार है। प्रत्येक गांव अनाज के ढेर, दूध के मटके, फूल, फल और सब्जियों से समृद्ध होता है। हर चीज काफी मात्रा में उपलब्ध होती है। लड़के-लड़कियां, पुरुष-स्त्रियां, बच्चे और बूढ़े अमीर और गरीब सभी इस त्योहार को खुशहाली के प्रतीक के रूप में बड़े हर्षोल्लास से मनाते हैं।

दुकानों और मकानों की लिपाई-पुताई काफी दिन पहले कर ली जाती है। घर के दरवाज़ों को रंगों से चित्रित किया जाता है। घर के फर्श और आंगन को मुग्गु या रंगोली से सजाया जाता है। **गोबिल्लू** अर्थात् गोबर के गोलों को रंगोली के बीच कलात्मक ढंग से रखा जाता है और उन्हें हल्दी, कुंकुम, फूलों आदि से सजाया जाता है।

तिल और चावल भी रंगोली के बीच रखे जाते हैं। बेटियों और दामादों को घर पर आमंत्रित किया जाता है। अविवाहित लड़के-लड़कियां अपने जीजा से खूब हंसी-मजाक करते हैं। त्योहार के पहले दिन को **भोगी** कहा जाता है। उस दिन लोग तड़के उठकर

तैल-स्नान करते हैं और भोगी मंतलु (अलाव) के पास बैठकर गपशप करते हैं। कुछ इलाकों में लड़कियां और स्त्रियां अलाव के गिर्द नृत्य करती हैं और फसल तथा देवताओं की प्रशस्ति के गीत गाती हैं। नव-विवाहित लड़कियां गौरी और लक्ष्मी की पूजा करती हैं। शाम को छोटे बच्चों के सिर पर बुडबुड पांडलू (गंडेरियां, रागु पांडुलु, पालकयालु (विशेष मिठाइयां) और पैसे डाले जाते हैं।

दूसरा दिन संक्रांति या पेड्डु पांडुग अर्थात् बड़ा त्योहार कहलाता है। गलियों में गरीबों और निम्न जाति के लोगों की भीड़ जुट जाती है। नये वस्त्र पहन कर वे दान की आशा में घर-घर जाते हैं। गांव के शहनाई और ढोल वादक, बुडुबुडुकल और दासरी भजन-कीर्तन गाने वाले जंगम और सजधज वाले बैलों का खेल दिखाने वाले गंगीरेड्डुलु गलियों में निकलते हैं। वास्तव में ये लोग त्योहार के पूर्व सारा महीना दिखाई देते हैं। गेंदे के फूलों के भरपूर रंगदार गुच्छों को चारों तरफ लगाया जाता है जिससे उत्सव की सुंदरता और बढ़ जाती है। किसान इस दिन अपने धोबी, नाई, लुहार, बढ़ई, परिवार के नौकर, काश्तकार और विभिन्न प्रकार के गांव के परंपरागत सेवकों को भोजन कराते हैं।

उत्सव के तीसरे दिन को कानुमु कहा जाता है। इस दिन सब काम रोक दिये जाते हैं और छुट्टी का उपयोग डट कर खाने-पीने में किया जाता है। मुर्गों, मेंढों और भैंसों की लड़ाई, बैलों की दौड़, कुश्तियां, शतरंज और चौपड़ के खेल की प्रतियोगिताएं इस दिन के सामान्य कार्यक्रम होते हैं। देश के कुछ भागों में चौथे दिन को भी उत्सव मनाया जाता है। इसे मुक्कनुमु कहा जाता है। इस दिन गाय और बैलों की पूजा का विशेष कार्यक्रम होता है। उन्हें नहलाया और सजाया जाता है और उनके बांधने के स्थानों को साफ किया जाता है। तथा खूंटों पर तेल मला जाता है। उन्हें मीठी चीजें खिलाई जाती हैं। कभी-कभी शराब भी पिलाई जाती है। फिर शाम को उन्हें जुलूस में निकाला जाता है।

संक्रांति के त्योहार की एक प्रमुख विशेषता पतंगबाजी है। बच्चे बूढ़े, लड़के-लड़कियां सभी पतंग उड़ाते हैं और इसके लिए पहले से ही तैयारी कर ली जाती है। संक्रांति को तिल संक्रांति भी कहते हैं। तिल का इस त्योहार पर व्यापक उपयोग किया जाता है। स्नान करते समय तिल और आंवले का लेप सारे शरीर पर किया जाता है। तिल चावल में भी मिलाये जाते हैं और विशेष व्यंजन पोंगली त्योहार पर तैयार किया जाता चक्किलम (जिसे संस्कृत में सशकुलिका कहते हैं) संक्रांति के दिनों का एक लोकप्रिय व्यंजन है। चावल के आटे के घोल में तिल और कुछ जीरा मिला कर इसे जलेबी की तरह तेल में पकाया जाता है। गुड़ में पके हुए तिल के लड्डू भी संक्रांति के त्योहार का विशेष व्यंजन हैं।

महाशिवरात्री—यह त्योहार माघ महीने (जनवरी-फरवरी) के कृष्णपक्ष के चौदहवें दिन पड़ता है। और कट्टर वैष्णवों को छोड़कर सभी हिंदुओं का त्योहार माना जाता है। शैवों का यह महान त्योहार है। इस त्योहार की पवित्रता के संबंध में पौराणिक परंपरा और लोक साहित्य में अनेक उल्लेख मिलते हैं। यह त्योहार सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान भगवान शिव को समर्पित है।

महाशिवरात्री की प्रमुख बातें हैं : 1. सारा दिन और सारी रात का उपवास, 2. रतजगा, और 3. शिव या उसके प्रतीक लिंग की पूजा। गरीब से गरीब व्यक्ति भी शिवरात्रि व्रतकर सकता है क्योंकि इसके लिए अधिक खर्च नहीं करना पड़ता। इसके लिए शिव की भक्ति ही पर्याप्त होती है। सारे आंध्र में हर जगह शिव मंदिर हैं। इससे सिद्ध होता है कि शैवमत किसी समय यहां का प्रधान मत था। स्नान के बाद प्रत्येक व्यक्ति शिव के मंदिर में जा कर अभिषेक करता है। अभिषेक में फल घी, दूध, दही, शहद, फूल, खीर आदि खर्चीले पदार्थों को भी काम में लाया जा सकता है, और पानी तथा पत्ते जैसे बिना खर्च की चीज़ों को भी। नारियल तोड़े जाते हैं और फूलों की भेंट चढ़ायी जाती है। मरेडु (बिल्व) के पत्ते और गनेरु (करवीर) या धतूरे के फूल भगवान शिव के बहुत प्रिय माने जाते हैं और भक्तगण प्रायः इन फूलों और पत्तों से शिव की पूजा करते हैं। वीरशैवों में षट्काल पूजा का विशेष अनुष्ठान किया जाता है। लिंगोद्भव काल अर्थात मध्यरात्रि को शिव को प्रसन्न करने के लिए बहुत पवित्र समय माना जाता है। जागरण करने वाले भक्त-गण नींद को दूर रखने के लिए पुराण-कालक्षेप, हरिकथा-कालक्षेप तथा भजनों में अपने को व्यस्त रखते हैं, अथवा देव-कथाओं से संबंधित लोक-नाटक देखते रहते हैं। दूसरे दिन शिव की पूजा के बाद व्रत तोड़ा जाता है। कुछ लोग इस त्योहार को बड़े पैमाने पर मनाते हैं और शैव ब्राह्मणों तथा शैव साधुओं को दान देते हैं। श्री शैलम्, केलेश्वरम् दक्षरामम्, अमरावती, महा-नदी, वेमुलवाडा, ऐनावोले और कालहस्ती कुछ प्रसिद्ध शैव तीर्थस्थल हैं जहां शिव रात्रि के दिन शिव की पूजा के लिए हज़ारों भक्त जमा होते हैं।

इन बड़े त्योहारों के अतिरिक्त, जिन्हें अधिक लोग मनाते हैं, कुछ त्योहार ऐसे हैं जो कुछ वर्गों तथा कुछ स्थानों तक ही सीमित हैं।

कामुनि निपुन्नम (पूर्णिमा) या होली का त्योहार फाल्गुन (फरवरी-मार्च) मास के शुक्ल पक्ष के पंद्रहवें दिन मनाया जाता है। रायलसीमा में कुछ सीमा तक और तेलंगाना में व्यापक रूप से उसे मनाया जाता है। मारवाड़ी, राजपूत और उत्तर भारत से आकर बसे हुएअन्य लोग इस त्योहार को बड़े हर्षोल्लास और धूमधाम से मनाते हैं। सारे तेलंगाना में कामदेव की प्रतिमा को पूर्णिमा के दिन जलाया जाता है। इसके

बाद वसंतोत्सव मनाया जाता है जिसमें लोग अपने संबंधियों तथा मित्रों पर रंग-गुलाल छिड़कते हैं।

भीष्म एकादशी: गंगा और शांतनु के पुत्र, कुरुक्षेत्र के महान योद्धा भीष्म पितामह को समर्पित यह त्योहार माघ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को मनाया जाता है। धर्मात्मा ब्राह्मण और सुशिक्षित क्षत्रिय ही इसे मनाते हैं चूंकि भीष्म निस्संतान थे अत: इसे मनाने वाले उनकी आत्मा की तृप्ति के लिए श्राद्ध करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। ब्राह्मण इस दिन व्रत रखते हैं, भीष्म की पूजा करते हैं और अगले दिन प्रीतिभोज (पराजन) द्वारा व्रत तोड़ते हैं। क्षत्रिय अपने कुल पुरोहित को बुलाकर भीष्म की कथा सुनते हैं और उन्हें खाने-पीने की चीज़ें तथा धन देते हैं।

मरगज यह रामानुज के अनुयायी, वैष्णवों का महत्वपूर्ण त्योहार है और इसे पूरे मार्गशिरा में महीने भर मनाया जाता है। यह बारह आलवार भक्तों या वैष्णव संतों में प्रमुख अंडाल को समर्पित है जिसे गोदादेवी या चुडुकुद्रुता भी कहा जाता है। उन्हें रंगनाथ से प्रेम था और वह उनके साथ एकाकार हो गयी थीं। उनके द्वारा तमिल में रचित भक्तिपदों को तेलुगु वैष्णव बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ गाते हैं प्रत्येक व्यक्ति सुबह चार बजे से पहले उठ जाता है और स्नान आदि करके वैष्णव मंदिर में पूजा करता है। यह क्रम महीना भर चलता है और त्योहार का समापन गोदादेवी और भगवान रंगनाथ के विवाह से होता है। यह विवाह बड़ी धूमधाम से तथा बड़ी भक्ति से किया जाता है।

[illegible] : यह त्योहार माथुर नाम के आदिवासियों द्वारा मनाया जाना है जो आदिलाबाद जिले के उटनूर तालुके में रहते हैं। यह त्योहार अविवाहित लड़कियों का है। और श्रावण (जुलाई-अगस्त) मास के शुक्ल पक्ष की प्रथमा के दिन मनाया जाता है। इस दिन सभी अविवाहिता माथुर लड़कियां गांव के नायक के घर इकट्ठी होती है और ताल वाद्यों के साथ गुरू के नाम से गीत गातीं हैं। वे गोगरी (गेहूं, चने और गुड़ का मिश्रण) खाती हैं। इस प्रकार सब लड़कियां सुबह-शाम नौ दिन तक नृत्य करती है। दसवें दिन वे मिट्टी, गेहूं और बंगाली चने पानी में भिगोती हैं। मिट्टी को पलास के पत्तों पर रखा जाता है। इस क्रिया को धोवी कहते हैं। गेहूं और बंगाली चने को मिट्टी में बो दिया जाता है। लड़कियों का नृत्य अगली पूर्णिमा, अर्थात् राखी पूर्णिमा तक चलता रहता है। उस दिन लड़कियां वहां उपस्थित माथुर पुरुषों की कलाई में राखी बांधती हैं और पुरुष उन्हें उपहार देते हैं। सामूहिक नृत्य तीन दिन तक चलता रहता है। तीसरे दिन लड़कियां व्रत रखती हैं और प्रत्येक अविवाहित लड़की अपने घर में मिट्टी की मूर्ति बना कर उसकी पूजा करती है। पूजा के बाद व्रत तोड़ा जाता है। यह सब तीज कहलाता है। अगले दिन सुबह लड़कियों के भाई मिट्टी की मूर्तियों को लात मार कर हटा देते हैं। तब

लड़कियां मूर्तियों को नायक के घर, आंगन में ले जाकर रख देती हैं। सभी मायुर पुरुष, बच्चे और बूढ़े नायक के घर, पर एकत्रित होते हैं और मूर्तियों के इर्द-गिर्द नाचते हैं। नायक उन्हें चाय और पान देते हैं। लड़कियां मूर्तियों को इकट्ठा करती हैं, मिट्टी में अंकुरित बीजों को निकालती हैं और तब मूर्तियों को नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। लड़कियां अपने साथ पूरणपूरी (मीठी रोटी) ले जाती हैं जिसे वहां खाती हैं। बीजों को घर वापस आकर पुरुष सदस्यों में बांट दिया जाता है। पुरुष कुछ उपहार लड़कियों को देते हैं और इसके साथ त्योहार का समापन होता है।

आयक अथवा भीमन : यह त्योहार कोलम आदिवासियों द्वारा मनाया जाता है जो आदिलाबाद जिले उटनूर तालुके के लेंडीगुडा क्षेत्र में रहते हैं। कोलम, सत्ती (दिसंबर) के महीने में पड़ता है। आयक या भीमन जिसे भीमदेव भी कहते हैं, कोलम लोगों का प्रधान देवता है। मोर पंखों से सुसज्जित नक्काशी की हुई लकड़ी की गदा जो तलवार अथवा बाजे और मिट्टी के छोटे-छोटे गुड्डों के साथ मोर या घंटियों की काली पट्टी बंधे बर्तन में रखी रहती है, वास्तव में भीमदेव प्रतीक हैं। इन चीजों को एक झोंपड़ी में रखा जाता है। बृहस्पतिवार के दिन भीमन के इन स्मृति चिन्हों को लाकर गांव के बीच हरे पत्तों के छोटे से घेरे में रख दिया जाता है। पहले दिन मुर्गे या बकरे की बलि दी जाती है। अगले दिन देवता के अवशेषों को गांव में लगभग अठारह किलो मीटर दूर मोडम-लोडि नाम की पहाड़ी नदी पर स्नान के लिए लाया जाता है। स्नान के बाद देवता को वापस अपने स्थान पर लाया जाता है और वहां भैंसे की बलि दी जाती है जिसे सब गांव वाले मिल कर खरीदते हैं। बाद में अलग-अलग व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा-पालन के लिए मुर्गे या बकरे की बलि देते हैं।

बलि दिये गये पशुओं के मांस को कबीले के सब लोग खाते हैं। इससे पहले कि सब लोगों को भोजन परोसा जाये, पुरोहित बलि-पशु के रक्त से, मिले पके जुआर को लेकर गांव में आता है और उसकी थोड़ी-थोड़ी मात्रा कोने के पत्थरों पर रख कर लौट आता है। अगले दिन देवता को अपने मूल स्थान पर पहुंचा दिया जाता है। तीन दिन तक चलने वाला यह त्योहार कोलम आदिवासियों तक ही सीमित है वे दूसरी जाति के लोगों को बलि के समय वहां उपस्थित नहीं रहने देते।

मेले और त्योहार

भारतीय गांवों में मेले से हमेशा उस स्थान का अभिप्राय लिया जाता है जहां विभिन्न प्रकार की वस्तुएं अदला-बदली या बिक्री के लिए रखी जाती हैं। वस्तुओं के उत्पादक कारीगर, शिल्पी, विभिन्न वस्तुओं को एक स्थान पर इस तरह प्रदर्शित करते हैं कि खरी-दारों को आकृष्ट किया जा सके। साधारणतया ये मेले किसी महत्वपूर्ण गांव में सप्ताह

के किसी दिन लगते हैं और वे समाज की आर्थिक पृष्ठभूमि से संबंधित होते हैं। वस्तुएं थोक या खुदरा बिक्री के लिए रखी जाती हैं। उनमें न केवल रोज़मर्रा की आवश्यक वस्तुएं होती हैं अपितु विलास की और कला की विलक्षण वस्तुएं भी होती हैं।

मेलों का आयोजन रस्म के तौर पर किया जाता रहा है। इसे संत या अंगडि भी कहा जाता था और वर्तमान शहरों में आज भी उपनगर का नाम उस गांव का संतपेट या अंगडिपेट पाया जाता है जहां परंपरागत मेले या संत होते थे और अब भी होते हैं। दूर-दूर से माल यहां आता है और प्रायः सारे का सारा बिक जाता है। मेले के लिए माल या वस्तुओं की कितनी मात्रा आवश्यक होगी इसका अनुमान मेले से काफी पहले लगा लिया जाता है। जब मेले त्योहारों के मौसम में होते हैं तो माल की मात्रा बढ़ जाती है।

त्योहार हमेशा ही सारे समाज के लिए खाने-पीने और खुशियां मनाने के अवसर होते और इन अवसरों पर सामाजिक प्रतिबंध ढीले पड़ जाते हैं तथा स्त्री-पुरुषों को सामान्य से अधिक आजादी मिल जाती है।

अधिकांश त्योहारों का धार्मिक महत्व होता है और जब किसी स्थान पर गांव के बहुत से लोग देवता की पूजा के लिए इकट्ठे होते हैं तो वहां मेला लगता है। इन परंपरागत और रस्मी मेलों और त्योहारों के दिन और इनकी अवधि निश्चित हो गई है। साधारणतया, ग्राम-देवता या ग्राम-देवी के साथ इनका संबंध होता है। लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए देवता की मनौती मनाते हैं और जब उनकी इच्छा पूरी हो जाती है तो वे त्योहारों के दिन ग्राम-देवता या देवी के दर्शनों के लिए और अपना वचन पूरा करने के लिए जमा होते हैं। ऐसे मौकों पर वे देवता को खाद्य पदार्थ या फलों की भेंट चढ़ाते हैं या एकांतवास करते हैं अथवा मुंडन आदि का संस्कार करके बाल चढ़ाते हैं। मुंडन संस्कार का अपना आध्यात्मिक महत्व होता है। मुंडन उस व्यक्ति का हो सकता है जो अहंकार त्याग कर अपने को समर्पित कर देता है और अपने व्यक्तिगत रंग-रूप या सज-धज के प्रति उदासीन हो जाता है। अपने शारीरिक आकर्षण के इस त्याग को देवता के प्रति सब से बड़ी भेंट माना जाता है। स्त्रियों की तरफ से ऐसा त्याग तो सर्वोच्च माना जाता है। मुंडन दो प्रकार का होता है। बच्चों का मुंडन जन्म के समय के बालों को काटने के लिए किया जाता है। यह स्वास्थ्य की दृष्टि से किया जाता है और ऐसा माना जाता है कि यह बच्चों के विकास में सहायक होता है। बड़ों का मुंडन हमेशा किसी वचन को पूरा करने के लिए या आत्म-त्याग के प्रतीक के रूप में किया जाता है। त्योहारों के मौसम में मुंडन संस्कार कोट्टपकोंडा, कोरुकोंडा, तिरुपति और सिंहाचलम् में बहुत होते हैं। अन्य स्थानों पर भी मुंडन होते हैं।

देवी-देवताओं का उद्गम बहुत रोचक होता है। पिथापुरम् में देवता मुर्गे के रूप में प्रकट होता है और वह कुक्कुटेश्वर कहलाता है। पट्टीसम् में सृष्टि का प्रतीक शिवलिंग

आलिगनबद्ध भुजाओं के चिन्ह के साथ है। मंडपाक में काकाति देवी के एक हाथ में डमरू दिखाया है जो नटराज के हाथ में सामान्यतया होता है और जो ब्रह्माण्ड के शाश्वत सृष्टि संगीत का प्रतीक है। अंचल में स्त्री के एक पयोधर को शिवलिंग के रूप में भक्तों द्वारा पूजा जाता है। रयाली में देवता स्त्री-पुरुष के संयुक्त रूप में है। यह रूप में केशव जग-मोहन का है। मूर्ति के सामने का भाग केशव या हरि का है और पीछे का भाग मोहिनी का। देवता का द्वित्व रूप शिव के साथ जुड़ी हुई है अर्धनारीश्वर की कल्पना के अनुरूप है।

इनके अतिरिक्त किसी ग्राम या ग्राम-समूह के अपने देवी-देवता हैं जिनके सम्मान में बड़ी श्रद्धा और उल्लास के साथ उत्सव मनाये जाते हैं। इन उत्सवों की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा की जाती है और लोग हजारों की संख्या में मंदिरों में या निश्चत स्थानों पर इकट्ठे होते हैं। ये त्योहार आमतौर पर वर्ष में एक बार आते हैं और महीने में तीन दिन से अधिक चलते हैं। त्योहार की अवधि भिन्न-भिन्न होती है। पोन्नूर में त्योहार महीना भर चलता है, करमपुडि में पंद्रह दिन और तेलगुंता में, तीस दिन तक।

त्योहारों के समय देवी-देवताओं के अतिरिक्त स्थानीय महापुरुषों या स्त्रियों की पूजा भी की जाती है। वुय्यूरु में गांव की एक सती की पूजा की जाती है। इस सबंध में यह कहानी बताई जाती है कि गांव का एक मुखिया किसी विवाहित स्त्री पर आसक्त हो गया। यह स्त्री पतिव्रता थी और वह पर-पुरुष के प्रेम-प्रस्ताव की उपेक्षा करती थी। उसके माता-पिता ने गांव के मुखिया के डर से उसे समझाया कि वह मुखिया की बात मान ले किंतु वह स्त्री और उसका पति अपने धर्म पर भरोसा करके अड़े रहे। दुष्ट मुखिया ने इसके पति की हत्या करवा दी और उस स्त्री ने पति की चिता पर बैठ कर आत्मदाह कर लिया। चिता पर बैठने से पहले उस स्त्री ने मुखिया को शाप दिया कि उसका घर नष्ट हो जायेगा और उस पर खून बहेगा। इस घटना को उत्सव के रूप में याद किया जाता है और इसका समाज की सदाचार संबंधी मान्यताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। बुराई का हमेशा बुरा फल मिलता है और अच्छाई की विजय होती है। उस स्त्री ने यह कसम भी खाई थी कि वह मुखिया के घर के खण्डहर पर झूला झूलेगी। यह दृश्य त्योहार के दिन रूपायित किया जाता है। उस स्थान पर जहां कभी मुखिया का घर था, एक झूला डाला जाता है और देवी की मूर्ति को वहां जुलूस में लाया जाता है। इसके बाद मूर्ति को झूले में रख कर झुलाया जाता है।

पति के साथ चिता में जलने वाली पतिव्रता स्त्री को पेरंतलु कहा जाता है। सती के महत्व को डा० ए० के० कुमार स्वामी ने अपनी पुस्तक "डांस आफ शिव" के एक निबंध में प्रतिपादित किया है। कहीं-कहीं सती पूजा कुछ परिवारों तक सीमित होती है जिनके पूर्वजों ने कभी सती होने की रस्म अदा की थी।

करमपुडि जिसे करयमपुडि भी कहा जाता है, पलनाड की लड़ाई का स्थान है। यह लड़ाई भाई-भाई के बीच दुश्मनी का परिणाम थी। इस लड़ाई में भारी संख्या में लोग मारे गये थे और उन घटनाओं की पुनर्सृष्टि लोकप्रिय गाथाओं में की जाती है जो सदियों से मौखिक परंपरा के माध्यमों से सुरक्षित हैं।[1] आजकल इस लड़ाई की स्मृति में दो सप्ताह का समारोह मनाया जाता है। समारोह का प्रारंभ अस्त्रों-शस्त्रों का संग्रह करके उन्हें पास की नदी नागुलेरु में धोकर किया जाता है। इसके बाद शस्त्रों की पूजा की जाती है। अनेक योद्धाओं का आह्वान किया जाता और उन्हें बलि दी जाती है।

भक्तजनों द्वारा देवताओं को दी जाने वाली भेंट की वस्तुएं और भेंट के तरीके भिन्न भिन्न होते हैं। कुछ लोग तीर्थ-यात्रा की भावना से दूर से चल कर पवित्र स्थान पर आते हैं। ये लोग भेंट में अनाज, फल, अन्य खाद्य पदार्थ तथा फूल चढ़ाते है। मुर्गा, बकरी या भैंस की भेंट भी दी जाती है। देवता के थान में पके चावलों का ढेर लगाया जाता है और फिर पशु-बलि दी जाती है। भात को बलि के रक्त से मिलाकर धार्मिक क्रिया के बाद भक्त-जनों में वितरित किया जाता है।

कोटप्पकोंड तथा अन्य स्थानों में बांसों के ऊपर दुर्ग-नुमा ढांचे (प्रभा) बनाते हैं। इसे दो बैलगाड़ियों पर खड़ा किया जाता है। उसके ऊपरी भाग में घंटियां बांधी जाती हैं और चोटी पर कलश सजाया जाता है। इस विशाल ढांचे को भक्तजन खींच कर देवता के मंदिर में ले आते हैं। संभवत: ये प्रभाएं युद्ध जीतने वाले कथा-नायकों की विजय पताकाओं का प्रतीक होती हैं। कुछ मंदिरों में भक्त-जन ऊंचे बांसों पर बत्तियां लटकाते हैं जिन्हें आकाशदीप कहा जाता है। प्रकाश को हमेशा ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। यहां ज्ञान की खोज की अभिव्यक्ति की जाती है। यह कार्तिक (नवंबर-दिसंबर) के महीने में शिव को दी जाने वाली भेंट है।

दक्षिण के कुछ जिलों में भयोत्पादक पूजा की जाती है। नेल्लोर शहर में दो समाधियां हैं जो शिव के पुत्र वीरभद्र को समर्पित हैं जिसने अपने नाना दक्ष की बलि के लिए जन्म लिया था। दक्ष ने यज्ञ के अवसर पर अपने दामाद शिव का उनकी गरीबी के कारण अपमान किया था। वीरभद्र की विनाश-लीलाएं बड़ी भयानक थीं और भक्तजन इनका स्मरण आग के साथ जोखिम भरे खेलों से करते हैं।

त्योहार के दिनों में मंदिर के प्रांगण को साफ किया जाता है और वहां लंबा आयताकार गड्ढा खोदा जाता है। भक्तों के एक दल को जो अधिकतर पुजारियों के परि-

1. इन गाथाओं को अब लिपिबद्ध कर लिया गया है। ब्रिटिश नागरिक और विद्वान श्री सी० पी० ब्राऊन ने पलनाड की लड़ाई की एक गाथा के दो पाठ खोज कर उनकी भाषा, काव्य-रूप आदि पर एक सरसरी टिप्पणी लिखी है। यह ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी, मद्रास में उपलब्ध हैं।

बार का होता है, पूजा के रूप में अग्नि-परीक्षा के लिए चुना जाता है। ये लोग पथ्या-पथ्य नियमों पालन करते हुए मंदिर वाले क्षेत्र में घूमते हैं। उस क्षेत्र के निर्दिष्ट कुओं आदि में स्नान करते हैं और अंतिम दिन जलती आग पर चलने के लिए तैयार हो जाते हैं। आयताकार गड्ढे में लकड़ी डालकर उसे जला दिया जाता है। अब आग की लपटें बुझ जाती हैं तो जलते अंगारों पर पंखे से हवा की जाती है ताकि सफेद, गरम अंगारे प्रकट हो जायें। अब देवता को जुलूस में लाया जाता है और गड्ढे के तीन या पांच फेरे लेने के बाद उसे उसमें प्रवेश कराते हैं। सबसे पहले वह और बाकी लोग उसके पीछे गड्ढे में पैर रखते हैं। भरपूर श्रद्धा के साथ वे आग पर चलते हैं और सात या नौ बार ऐसा करते हैं। उनके पैरों को आग से क्षति नहीं पहुंचती। देवता में विश्वास ही उन्हें इस चमत्कार में सक्षम बनाता है। यह त्योहार सामान्यतया तीन या पांच वर्ष में एक बार मनाया जाता है।

एक मंदिर श्री कृष्ण धर्मराज का है। धर्मराज और उसकी पत्नी कृष्णा को, जिसे द्रौपदी भी कहा जाता है, मंदिर में प्रतिष्ठित किया जाता है। जनश्रुति के अनुसार द्रौपदी पांच भाइयों की पत्नी थी और प्रत्येक के साथ वह एक वर्ष बिताती थी। एक वर्ष की समाप्ति पर दूसरे भाई के पास जाने से पहले वह अग्नि परीक्षा द्वारा आत्म-शुद्धि करती थी। आत्म-शुद्धि के इस कार्य से प्रेरित होकर देवता के पुजारी इस अग्नि परीक्षा से गुजरते हैं। यह मंदिर महाभारत के पांडवों को समर्पित है जिनकी यहां मूर्तियां हैं। आग पर चलने का समारोह नेल्लोर के अतिरिक्त बादमपेट, शम्नपुरा, कोट्टाकोंडा, तेगड़ा और चिलामनुरू में भी प्रचलित है।

त्योहार के दिनों में लोग रामायण-महाभारत तथा पुराणों की कहानियों के अभिनय का अभ्यास करते हैं और चार-पांच दिनों तक नाटक खेले जाते हैं। इसे देव-पूजा का अंग माना जाता है। पेशेवर लोक गायकों द्वारा इन विषयों पर वीर-गीत गाये जाते हैं। संगीत और ताल के साथ उनके गीत गांव के श्रोताओं को प्रेरित करते हैं।

इस अवधि में भरपूर मनोरंजन के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। बच्चों में झूले बहुत लोकप्रिय होते हैं। लाटरी, सर्कस, भजन, संगीत, नृत्य, व्यायाम-कौशल आदि लोगों का भरपूर मनोरंजन करते हैं।

अंत में त्योहार के दिनों की महत्वपूर्ण और अजीब प्रथा का उल्लेख करना भी आवश्यक है। घास-फूस की रस्सी बनाई, जाती है और उसके बीच कुछ-कुछ फासले पर घास-फूस के गोले बांध दिये जाते हैं। पूजा के रूप में इस रस्सी में आग लगा दी जाती है और जब यह जल रही होती है तो देव प्रतिमा के साथ जुलूस इस जलते हुए तोरण के बीच से गुजरता है। जब तोरण बुझ जाता है तो पूजा समाप्त हो जाती है। जले हुए तोरण की राख को भक्त जन इकट्ठा करके अपने घर ले जाते हैं और इसे

चारे में मिलाकर जानवरों को खिलाते हैं। विश्वास किया जाता है कि इस से पशु बीमारियों से बचेंगे। घास-फूस का ढेर आदमी के पापों का प्रतीक होता है जो जल जाता है। पूजा का यह सीधा-सादा रूप टेकी, मुक्तेश्वरम तथा कुछ अन्य जगहों में प्रचलित है।

पुजारी और भक्तजनों के मन में हमेशा कुछ इच्छाएं होती हैं जिन्हें वे पूरा करना चाहते हैं। बीमार आदमी, बांझ स्त्रियां, पीड़ित व्यक्ति, भगवान को खोजने वाले उत्साही भक्त तथा अन्य लोग त्योहार के दिन मंदिर आने की प्रतिज्ञा करते हैं और उसे पूरा करते हैं। शुद्ध मन से ऐसा करने से उन्हें मानसिक शांति मिलती है।

ऐसे हज़ारों धार्मिक या लौकिक केंद्र हैं जहां साप्ताहिक, मासिक अथवा वार्षिक मेले लगते हैं। आंध्र के हर गांव या शहर में कोई न कोई मंदिर या पूजा-स्थल है। इनमें कुछ का केवल स्थानीय महत्त्व है और कुछ व्यापक महत्त्व के हैं। अमरावती, श्री शैलम्, त्रिपुरांतकम्, कालेश्वरम्, दक्षरामम्, कालहस्ति, वेमुलवाडा और इनावोल महत्वपूर्ण शैव-क्षेत्र हैं। और श्री कुरमम्, सिंहाचलम्, नेल्लोर, तिरुपति, अहोबिलम्, श्री काकुलम्, यादगिरि, भद्राचलम् और मंगलगिरि अत्यंत महत्त्वपूर्ण वैष्णव क्षेत्र हैं। महत्वपूर्ण शक्ति-क्षेत्रों में वारंगल्, मंडपाक, आलमपुरम, सिकंराबाद, बेजवाडा, सुलुपेट और दोनाकोंडा उल्लेखनीय हैं।

इन स्थानों की ओर सारा साल लाखों भक्त-जन आकृष्ट होते हैं और जो परंपरागत धार्मिक क्रियाएं की जाती है वे आगम के अनुसार होती हैं। ये क्रियाएं देश के अन्य भागों में की जाने वाली क्रियाओं से ज्यादा अलग नहीं होतीं केवल स्थानीय परंपरा का भेद होता है। आंध्र की लोक संस्कृति के कुछ छोटे केंद्रों का वर्णन यहां किया जा रहा है।

(1) कोटपकोंडा, जिसे आंध्र के इतिहास में त्रिकूट पर्वत भी कहा गया है, गुंटूर जिले के नरसरावपेट तालुके में स्थित है। इस क्षेत्र में बिखरे अनेक मंदिरों में से पहाड़ी पर बना कोटेश्वर स्वामी का मंदिर प्रमुख पूजा-स्थल है। महाशिवरात्रि के दिन यहां बहुत बड़ा मेला लगता है और लाखों नर-नारी इसमें शामिल होते हैं। मेले में मिठाइयां फल, खाद्य-पदार्थ, बरतन, लालटेनें, खेती के औज़ार, कपड़े, चूड़ियां, खिलौने, बांस की चीजों के अतिरिक्त गाय-बकरियां तथा दूसरे पालतू जानवर बिकते हैं। प्रतिज्ञा करने वाले यहां अपना मुंडन कराते हैं। अनेक भक्त-जन मनौती मनाने के लिए अपने गांव से चलकर पहाड़ी पर आते हैं और अपने साथ जगमगाती हुई, सजधज वाली प्रभाओं को लाते हैं। इन प्रभाओं की संख्या मेले में पांच सौ के लगभग हो जाती है। इनमें से कुछ लगभग पैंतीस मीटर से ऊंची होती हैं और उन्हें बनाने में सात से आठ हजार का खर्च होता है।

(2) पूर्वी गोदावरी जिले का मुख्यालय पेड्डापुरम्, भी एक एतिहासिक स्थान है।

यहां शिव, राम, वेंकटेश्वर, चंद्रशेखर, आंजनेय, सूर्यनारायण, मरिदम्मा, कन्यका-परमेश्वरी और नुकलम्मा के मंदिर हैं। जहां हजारों यात्री आते हैं। मरिदम्मा का त्योहार जेष्ठ मास (मई-जून) की अमावस्या से लेकर आषाढ़ (जून-जुलाई) की अमावस्या तक 31 दिन तक मनाया जाता है। हज़ारों लोग कोलाटम के साथ यहां इकट्ठे होते हैं और व्यायाम-कौशल तथा लाठी के खेल का प्रदर्शन करते हैं। इसके अतिरिक्त वे संगीत, नृत्य, तालवाद्य, गरगानृत्य, जुलूस तथा अन्य सामूहिक कार्यक्रमों का आनंद लेते हैं। भेंट कई प्रकार की चढ़ाई जाती है जैसे मुर्गा, भेड़, बकरी, भैंस, चलिमीड़ि, फल, अनाज, सोने और चांदी के आभूषण, साड़ियां, ब्लाऊज, हल्दी कुंकुम, कपूर और नकद रुपये। विविध प्रकार की घरेलू वस्तुएं त्योहार के अवसर पर लगे मेले में बिकती हैं। साइकिल-दौड़, पशु प्रदर्शनियां, तोता-सर्कस, और कृषि-प्रदर्शनियों का आयोजन भी किया जाता है। कुंभम् (पके चावल) को सुसज्जित पात्रों में रख कर सजी हुई खुली बैलगाड़ियों में ले जाया जाता है। इसके लिए अतिरिक्त ऐतिहासिक तथा पौराणिक महापुरुषों के आदम-कद चित्र भी गाड़ियों पर रखे जाते हैं। कभी-कभी ऐतिहासिक पौराणिक व्यक्तियों की वेश-भूषा में स्त्री-पुरुष भी गाड़ियों में खड़े किये जाते हैं। इन गाड़ियों को जुलूस में संगीत-नृत्य के साथ मंदिर में ले जाया जाता है और देवता को भेंट किया जाता है। इसके बाद प्रसाद के रूप में भोजन बांटा जाता है।

(3) पश्चिमी गोदावरी जिले में तानुकु के मंडपाक स्थान में सोमेश्वर स्वामी, केशव स्वामी, श्रीराम, गणपति और येल्लारम्मा के मंदिर हैं।

सोमेश्वर स्वामी कल्याणोत्सव माघ मास में पांच दिन तक मनाया जाता है। केशव स्वामी कल्याणोत्सव फाल्गुन मास में सात दिन तक मनाया जाता है। येल्लारम्मा जात्रा चैत्र मास की पूर्णिमा के दिन मनायी जाती है। येल्लारम्मा काकातिय राजा की प्रसिद्ध देवी काकतम्मा की सहेली है। उसके चार हाथ हैं। दो हाथों में डमरू और तलवार और दो हाथों में त्रिशूल तथा पात्र होता है। देवी के पैरों के नीचे एक पशु की प्रतिमा होती है जिसे कुछ लोग लोमड़ी और कुछ घूस (बड़ा चूहा) बताते हैं। देवी येल्लमा (येल्लारम्मा) की पूजा सारे आंध्र प्रदेश में की जाती है। इस स्थान का गरगा जुलूस बहुत प्रसिद्ध है और यहां मेले का आयोजन भी किया जाता है।

(4) कृष्णा जिले के कैकलूर तालुके का कोल्लेटीकोटा स्थान भी ऐतिहासिक महत्व का है। यह कुल्लेरू झील के मध्य स्थित एक अभेद्य जल दुर्ग था और यहां मध्यकाल में कई घोर युद्ध हुए थे। इस दुर्ग का प्राचीन वैभव अब समाप्त हो गया है और अब यह एक अज्ञात गांव रह गया है जिस तक केवल नाव द्वारा पहुंचा जा सकता है।

प्रारंभ में, कोल्लेटीकोटा में जलदुर्गा को समर्पित एक मंदिर था। उड़ीसा के राजा

अंबदेव राय ने किले को जीतकर जलदुर्गा की मूर्ति के स्थान पेड्डिंतम्मा या मातंगी देवी की स्थापना की थी। इस देवी का समारोह फाल्गुन मास के पहले दिन से लेकर सोलह दिनों तक मनाया जाता है। दसवां, ग्यारहवां और बारहवां दिन अत्यंत महत्व-पूर्ण माना जाता है। ग्यारहवें दिन जलमुर्गा और गोकर्णेश्वर स्वामी का विवाह किया जाता है। इस अवसर पर लगभग दस हजार मुर्गों, पांच सौ बकरों और एक हजार भेड़ों की बलि देवी को चढ़ायी जाती है। बलि का काम किले के पीछे मंदिर से काफी दूर किया जाता है। नारियल, केले, केसर और कुंकुम की भेंट भी देवी को चढ़ायी जाती है। आस-पास के जिलों से लगभग एक लाख व्यक्ति त्योहार के अवसर पर यहां इकट्ठे होते हैं। मंदिर के सामने मेले का आयोजन भी किया जाता है।

(5) नेल्लोर जिले के कोनूर तालुके में विडवलुरू स्थान पर पोलेरम्मा, काष्ठ प्रतिमा वाली अंकम्मा, उसकी बहन काष्ठ प्रतिमा वाली महालक्षममम्मा और भाई पोतुराजु, भगवान कोदंडराम और लिंगेश्वर (पत्नी पार्वती सहित) के मंदिर हैं।

रार्मालगेश्वर स्वामी ब्रह्ममोत्सव फाल्गुन महीने में पांच दिन तक मनाया जाता है और कोदंडरामस्वामी समारोह चैत्र मास में सात दिन तक मनाया जाता है।

पोलेरम्मा का त्योहार तीन दिन तक मनाया जाता है। एक विशाल कुंभम् (पके चावल का ढेर) देवी को भेंट किया जाता है जिसमें बलि के भैंसे का रक्त मिलाने के बाद उसे एक व्यक्ति के सिर पर रखा जाता है। वह उसे गांव के चारों ओर बिखेरता है। उस समय बाहर के किसी व्यक्ति को वहां ठहरने नहीं दिया जाता क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि बलि का प्रसाद दूसरे गांव में चला गया तो उस गांव को देवताओं का आशीर्वाद मिल जायेगा और जो गांव देवी की पूजा करता है उसे कुछ नहीं मिलेगा। अतः बलि को उठाने वाले व्यक्ति पर निगरानी रखी जाती है और उसके ऊपर तलवारें झुकायी जाती हैं।

अंकम्मा का त्योहार आषाढ़ मास में पांच दिन तक मनाया जाता है। देवी की प्रतिमा को पालकी में रखा जाता है और तड़के उसका जुलूस निकाला जाता है। फर्श पर रंगोली बनायी जाती है। ढेर सारा भात भेंट चढ़ाया जाता है और मेंढे की बलि दी जाती है। अगले दिन शाम के समय अंकम्मा को शेर के आकार वाले वाहन पर और उसकी बहन महालक्षमम्मा को सियार के आकार वाले वाहन पर एक टोकरी के साथ चार पहियों वाली गाड़ी में ले जाया जाता है। गांव वाले टोकरी में नीम के पत्ते और भात डालते हैं। गाड़ी की सलाखों पर एक छिपकली, एक सुअर, एक बकरा, एक मुर्गा और एक आटे की बनी मानवाकृति को लटकाया जाता है। इस तरह जुलूस संगीत और नृत्य के साथ मंदिर की ओर जाता है। चौथे दिन भक्तजन उपवास करते हैं और अपना वचन पूरा करते हैं। चावल के आटे और गुड़ के लड्डू अंकम्मा, महा

लक्षमम्मा, पोलेरम्मा और पोतुराज को भेंट चढ़ाये जाते हैं। एक गाड़ी में भात और काले चने से भरे बर्तन मंदिर में ले जाते हैं और मंदिर की परिक्रमा करके उन्हें देवता को अर्पित कर दिया जाता है। अंकम्मा और महालक्षमम्मा को क्रमशः मेंढे और बकरे की बलि चढ़ाई जाती है। पांचवें दिन अंकम्मा और महालक्षमम्मा अपने-अपने वाहनों पर गांव के उत्तर में शिकार खेलने जाती हैं। वहां मेंढे का कान काटा जाता है और उसे मंदिर की तरफ से जाया जाता है। अंकम्मा और उसके संबंधियों के लिए सभी आवश्यक वस्तुएं मुहैया की जाती हैं और मंदिर को तीन दिन के लिए बंद कर दिया जाता है। विश्वास किया जाता है कि यदि कोई इन तीन दिनों में मंदिर का द्वार खोलेगा तो उस का सिर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।

(6) कुड्डप्पा जिले के रायाचोटी तालुके में डप्पेपाल्ले नामक स्थान में ब्रह्मगिरि नाम की एक गुफा है जिसके भीतर एरिदैय्या (लाल सांड) और पासेदैय्या (सफेद सांड) और गाय की मूर्तियां हैं। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन काल में इस गांव में अलौकिक शक्ति वाले दो बैल पैदा हुए थे। उनकी यादगार को बनाये रखने के लिये गांव वालों ने उनकी तथा उनकी गाय की मूर्तियां बनाकर गुफा में रखी थीं।

आवुदेवता का त्योहार जेष्ठ मास में तीन दिन तक मनाया जाता है। पहले दिन भक्तजन गुफा में जाते हैं और देवता की पूजा करते हैं। जिसकी प्रतिमा को फूलों से सजी गाड़ी में बाहर लाया जाता है और एक निश्चित स्थान पर रखा जाता है। दूसरे दिन उस स्थान पर अनेक अन्य मूर्तियां लायी जाती हैं। तीसरे दिन इन देवताओं की पूजा की जाती है और जिन लोगों को मूर्तियों को वापस उनके स्थान पर ले जाना होता है, उन्हें भोजन कराया जाता है। शाम के समय इन देवताओं को विदाई दी जाती है और पर्वत में गुफा को सजाने के बाद आवुदेवता को वापस वहां पहुंचाया जाता है तथा उसकी पूजा की जाती है। वचन पूरा करने के प्रतीक स्वरूप देवता को साधारण छतरियां, रेशम की छतरियां, कढ़ाई की हुई छतरियां तथा मोरपंख भेंट किये जाते हैं। भक्तजन अपने बच्चों के नाम इन देवी-देवताओं के नाम पर रखते हैं जैसे, आवुलक्क, एदैय्या, पासन्न आदि। त्योहार के अवसर पर मेले का आयोजन भी किया जाता है।

(7) अनंतपुर जिले के तालुका मुख्यालय उर [illegible] ोंडा में सिद्धेश्वर, मल्लेश्वर, सुब्बराय और पांडुरंगस्वामी के मंदिर हैं। सिद्धेश्वर का [illegible] र गवीमठ के ऊंची दीवारों वाले प्रांगण में स्थित है। इस मठ को बसव भक्ति के प्रचार [illegible] महान शैव संत वैराग्य चेन्नबसवस्वामी के शिष्य करिवसवस्वामी ने स्थापित किया था। ये संत तपस्यापूर्ण जीवन और मानवता की सेवा के लिए प्रसिद्ध हैं। करिबसवस्वामी ने आंध्र, कर्नाटक महाराष्ट्र में अनेक मठ स्थापित किये थे। योगमंतप के पास उसकी समाधि पिछली दो शताब्दियों से पूजा-स्थल रही है। फाल्गुन मास में आठ दिन तक यहां रथ-समारोह मनाया जाता है। विभिन्न

राज्यों के चालीस-पचास हजार भक्तजन इस अवसर पर इकट्ठे होते हैं। मंदिर के सामने खुले मैदान में इन आठ दिनों में मेला लगता है। गरीबों को भी भोजन खिलाया जाता है।

(8) महबूबनगर जिले के तालुका मुख्यालय आलमपुरम् तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित है। यह एक पवित्र स्थान है जो अनेक प्राचीन वस्तुओं के कारण तथा चालूक्य काल तक के मंदिरों के कारण प्रसिद्ध है। कृष्णदेवराय के समय में मंदिर तथा नगर की रक्षा के लिए विशाल किले का निर्माण किया गया था। किले की दीवारों पर महाभारत के प्रसंग दिखाये गये हैं। आलमपुरम को दक्षिण काशी भी कहा जाता है। यह वेदावती और नंदावती के बीच स्थित है, जैसे काशी वरना और असी के बीच है। यहां तुंगभद्रा के किनारे पर 84 घाट बने हैं और 18 पापनाशिनी तीर्थ हैं, जैसे काशी के हरिश्चंद्र और मणिर्कणिका तीर्थ हैं जहां पवित्र जल प्राप्त किया जा सकता है। काशी विशालाक्षी का प्रतिरूप आलमपुरम् की जोगुलंबा है।

आलमपुरम् कोटिलिंग (एक करोड़ लिंगों) के लिए भी प्रसिद्ध है। यह स्थान ब्रह्मेश्वरम् कहलाता है। कहा जाता है कि इस स्थान पर ब्रह्मा ने ईश्वर से सृष्टि-निर्माण की शक्ति प्राप्त करने के लिए तप किया था। ईश्वर ने बालक के रूप में प्रकट होकर उसकी इच्छा पूरी की थी। इस प्रकार यहां के देवता का नाम बाल ब्रह्ममेश्वर पड़ा। संभवत. यह एक मात्र स्थान है जहां चार सिरों वाली ब्रह्मा की प्रतिमा पूजा की जाती है। इसे परशुराम क्षेत्रम भी कहा जाता है क्योंकि यहां पर ऋषि परशुराम अपने माता-पिता रेणुका तथा जमदग्नि के साथ रहे थे! यहीं पर परशुराम ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी माता का सिर काटा था। रेणुका का सिर जो चांडालों के हाथों पड़ा। (एक प्रख्यात दुष्ट आदिवासी जाति) एलम्मा के नाम से सारे आंध्र में पूजा जाता है और उसका धड़, भूदेवी के रूप में पूजा जाता है। रेणुका के धड़ की सुंदर पाषाण प्रतिमा बाल ब्रह्ममेश्वर के पास मंतप में है। निस्संतान दम्पत्ति इस प्रतिमा पर दही चढ़ाते हैं और उसे प्रसाद के रूप में प्राप्त करते हैं।

आलमपुरम् के दुर्ग-क्षेत्र में उत्तर भारत की शैली में नौ ब्रह्ममेश्वर मंदिर बने हुए हैं। ये हैं बालब्रह्म, कुमारब्रह्म, अर्कब्रह्मम, धीरब्रह्म, विश्वब्रह्म, तारकब्रह्म, गरुड़ब्रह्म, स्वर्गब्रह्म और पदमब्रह्म। बालब्रह्ममेश्वरलिंगम् को स्वयंभू कहा जाता है। अभिषेक के समय बालब्रह्ममेश्वरलिंगम् पर जितना भी पानी डाला जाता है, वह लिंग के आस-पास ही लुप्त हो जाता है और एक बूंद भी बाहर नहीं जाता। अन्य मंदिरों में डुंथी गणपति, दत्तात्रेय, नरसिंहस्वामी, आंजनेयस्वामी, सूर्यनारायणस्वामी, बसवेश्वर, नीलकंठेश्वर, वेंकटेश्वर तथा कृष्ण की पूजा होती है।

बालब्रह्ममेश्वरस्वामी मंदिर में उच्च कला-कौशल युक्त अनेक प्रस्तर प्रतिमाएं हैं।

जोगुलम्बा की प्रतिमा बहुत डरावनी है। श्री शंकराचार्य इस मंदिर में गये थे और उन्होंने इसे मान्यता दी थी। इस स्थान की विशेषता है सप्त मातृकाएं अर्थात् ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इंद्राणी और चांमुडी तथा उनकी अलग-अलग रखी हुई प्रतिमाएं। ये प्रतिमाएं एक पत्थर को काट कर बनाई गयी हैं और उनके पीछे की ओर चार हाथ वाले, वीणा बजाते हुए वीरभद्र की मूर्तियां और विघ्नेश्वर की मूर्तियों हैं। चालूक्यों के कुलदेवता, कुमारस्वामी की मूर्ति उत्कृष्ट कला नमूना है। ब्रह्मा, ईश्वर, विष्णू, कालभैरव, लकुलेश, अर्धनारीश्वर और हरिहर की मूर्तियां भी बहुत सुंदर बनी हुई हैं। चंडी और मुंडी की कंकाल मूर्तियां, नंगा रूप, खोपड़ियों की माला पहने हुए, हाथ में सुरापात्र और सिर पर उल्लू, छिपकली और बिच्छू के आभूषण बड़ा विचित्र दृश्य उपस्थित करती हैं। रस सिद्ध की प्रस्तर मूर्ति भी बालब्रह्मेश्वर मंदिर है जिसे आलमपुरम् के मंदिर का निर्माता बताया जाता है। इनके अतिरिक्त वहां कई और मंदिर है जिनमें धार्मिक कला एवं मूर्तिकला के उदाहरण मिलते हैं।

बालब्रह्मेश्वर का त्योहार शिवरात्रि से लेकर पांच दिन तक मनाया जाता है। इन त्योहारों पर दस हजार से भी अधिक लोग जमा होते हैं। जोगुलम्बा नवरात्रि का त्योहार असौज महीने में नौ दिन तक मनाया जाता है।

(9) मेडक जिले के मुख्यालय संगरेड्डी में माणिक्यप्रभु, श्रीराम, आंजनेय, नरसिंह, विट्ठलेश्वर, संगमेश्वर, बसवन्न के मंदिर तथा दोक्कलम्मा, दुर्गंमा और एलम्मा ग्राम-देवियों के मंदिर हैं।

दुर्गम्मा का त्योहार भाद्रपद (अगस्त-सितंबर) में चार दिन तक मनाया जाता है। पहले दिन निकटस्थ नदी मंजीरा से पूजा जल लाया जाता है। दूसरे दिन बलि के भैंसे को नदी पर ले जाया जाता है। वहां पानी की देवी की पूजा करने के बाद भैंसे को नहलाया जाता है और उसे सजाकर बाजों-गाजों के साथ जुलूस में मंदिर लाया जाता है। अगले दिन भैंसे की बलि दी जाती है तथा उसके बाद भक्तजन बड़ी संख्या में मुर्गों, बकरों, मेंढों और भैंसों की बलि देते हैं। शाम के समय मंदिर के प्रांगण को साफ किया जाता है और वहां पके चावल और मांस का ढेर देवता के चढ़ावे के लिए रखा जाता है। एक मिट्टी का कच्चा बरतन गर्दन तक जमीन में गाढ़ दिया जाता है और उसकी गर्दन पर सूप रख कर एक औरत उस पर बैठती है। फिर जैसे कि देवआत्मा के प्रभाव में भविष्यवाणी करती है। एक आदमी दुर्गाम्मा के भाई पोतुराजु का रूप धरता है जिसके शरीर पर हल्दी-कुंकुम का लेप किया जाता है और अमरगाछ के पत्तों से उसके सिर गर्दन और कमर को सजाया जाता है। मंदिर की परिक्रमा के बाद वह अपने दांतों से एक मेढ़े को गला काट कर मारता है। अंतिम दिन भक्तजन बोनाल के साथ (मिट्टी

के बर्तन में पके चावल और जलते दीये को एक सूप में रख कर) मंदिर की परिक्रमा करते हैं। फूलों और रंगीन साड़ियों से बैल गाड़ियों को सजाकर मंदिर के चारों ओर घुमाया जाता है। इसके बाद प्रसाद बंटता है। त्योहार के अवसर पर एक मेले का आयोजन भी किया जाता है।

दत्तात्रेय के अवतार माणिक्य प्रभु की जयंती मार्गशिरा (नवंबर-दिसंबर) में पांच दिन तक बड़े पैमाने पर मनायी जाती है। इस अवसर पर पड़ोसी राज्य महाराष्ट्र और कर्नाटक से भी लोग आते हैं।

(10) जिला मुख्यालय निजामाबाद, जिसे कभी इंदूर कहा जाता था, एक और ऐतिहासिक स्थान है। इस किले में जैन कला की अनेक वस्तुएं हैं और यह बारहवीं शताब्दी में निर्मित बताया जाता है। बड़ा राम मंदिर, दत्त मंदिर तथा हनुमान रघुनाथ-स्वामी, नीलकण्ठेश्वर स्वामी और वेंकटेश्वर के मंदिर यहां के पूजा-स्थल हैं। कहा जाता है कि बड़ा राम मंदिर का निर्माण शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास ने किया। यहां पर मार्गशिरा के महीने में दस दिन तक रामनवमी और नौ दिन तक दत्ता जयंती मनायी जाती है। भजन, हरिकथा और मुफ्त भोजन इस अवसर की सामान्य बातें हैं। नीलकण्ठेश्वर का मंदिर दर्शनीय पहाड़ी के ऊपर स्थित है और उसके चारों तरफ ऊंची दीवार है। मंदिर की विशेषता यह है कि उगते सूर्य की किरणें सीधे शिवलिंग पर पड़ती हैं। नीलकण्ठेश्वर का त्योहार माघ महीने में रथ शप्तमी के अवसर पर दो दिन तक मनाया जाता है जिसमें तीस हजार से अधिक भक्तजन यहां इकट्ठे होते हैं। झंडा त्योहार या वेंकटेश्वर स्वामी मेला (ग्रामीण मेला) भाद्रपद के महीने में पंद्रह दिन तक मनाया जाता है। एक स्थान पर झंडा लगाया जाता है लोगों की भीड़ उसे देखने के लिए जुटती है। यह झंडा चित्तूर जिले में स्थित तिरुपति के मंदिर में हर वर्ष ले जाया जाता है और फिर उसे वापस लाया जाता है। कुछ भक्तजन जो तिरुपित नहीं जा सकते, अपनी मनौती यहीं मना लेते हैं। देवता का चढ़ावा नकद रुपये अथवा वस्तुओं के रूप में होता है।

(11) आदिलाबाद जिले के उटनूर तालुके में भुर्नूर के निवासी प्रधानों और गोंडों के देवता हैं आकिपेन, ओवुलपेन, मसोवा और सत्तीपेन, जिनके मंदिर गांव के निवास-क्षेत्र से बाहर होते हैं।

आकिपेन गांव की रक्षा करने वाला देवता है और उसकी पूजा पहली फसल की बुवाई के समय की जाती है। लकड़ी के एक बड़े खंभे के साथ दो छोटे खंभों को बांधा जाता है। बड़े खंभे पर सफेद झंडा लगाया जाता है। इसे देवता का प्रतिरूप माना जाता है। इस प्रकार देवता को स्थापित करते समय कुछ पत्ते नीचे रखे जाते हैं। त्योहार और धार्मिक अनुष्ठानों का दिन गांव के प्रतिष्ठित लोगों की सुविधानुसार चुना जाता है।

देवता की पूजा बीजों के भली प्रकार उगने की कामना से की जाती है। मुर्गे या बकरे की बलि दी जाती है और अच्छी फसल के लिए प्रार्थना की जाती है। सामान्यतया उत्सव दोपहर तक समाप्त हो जाता है और उसके तुरंत बाद गांव वाले बुवाई करने लगते हैं।

आवुलपेन या पोचम्मा (चेचक की देवी) की पूजा चैत्र और श्रावण महीनों में महा-मारियों से रक्षा के लिए की जाती है। देवी को एक बकरे की बलि दी जाती है और उसका मांस गांव के सब घरों में बराबर-बराबर बांटा जाता है। नव-विवाहित दम्पति विवाहित जीवन की सुख-समृद्धि के लिए देवी की पूजा करते हैं।

सीमा का देवता मसौबा, एक तिकोने पत्थर के रूप में होता है और उसकी पूजा दशहरे के अवसर पर की जाती है। देवता को बकरे की बलि दी जाती है और उसका मांस सबको बांटा जाता है।

ग्रामदेवता सत्तीपेन की पूजा फसल की कटाई के तुरंत बाद नवंबर के महीने में होती है। किसी सुविधाजनक दिन को सभी गांव वाले अपनी फसल का कुछ भाग लाकर देवता की मूर्ति के आगे रखते हैं और समृद्धि के लिए उसका आह्वान करते हैं। पूजा के बाद ही लोग भोजन पकाते और खाते हैं।

पर्वतों और जंगलों के राजा पोलमराजु या नागोबा के सम्मान में एक दिन का राजुला त्योहार मनाया जाता है। यह देवता पशुओं और ग्वालों का रक्षक माना जाता है। आषाढ़ महीने की पूर्णिमा के दिन सभी पुरुष और बच्चे अपने मवेशियों के साथ पास के जंगल में जाते है और वहां राजुला को बकरे की बलि दी जाती है। खीर पकायी जाती है और उसमें से कुछ पशुओं को चटायी जाती है और जो शेष बच रहे उसे परिवार के सदस्य मिलकर खाते हैं। इसके बाद बीस-तीस मीटर लंबी हल्दी रेखा खींची जाती है और सारे मवेशियों को उस रेखा के ऊपर से गुजार कर बिना ग्वाले के जंगल में हांक दिया जाता है। दूसरे दिन उन्हें वापस ले आते हैं। जिस समय पुरुष पूजा कर रहे होते हैं। तब स्त्रियां खीर आदि बनाने का काम करती हैं। सामिष भोजन और खीर पकाई जाती है जिसे सब लोग बड़े मजे से खाते हैं। सब की तरफ से एक बकरे की बलि दी जाती है और उसका मांस सब में बांट दिया जाता है। जब तक यह समारोह समाप्त नहीं हो जाता टीक के पेड़ के पत्ते को कोई नहीं छूता। इस त्योहार के पीछे यह विश्वास है कि यदि उस दिन जंगल में हांके गये पशुओं में से किसी को शेर मार डालता है तो गांव को सारे साल शेर के खतरे का सामना करना पड़ता है।

(12) करीमनगर जिला और तालुका के बेज्जंकी नामक स्थान में पहाड़ी के निकट लक्ष्मीनरसिंह स्वामी का मंदिर है। इतिहासकारों का मत है कि किसी समय यह जैन केन्द्र था। पूजा स्थान के चार स्तंभों पर देवताओं, मानवों, पशुओं आदि की मूर्तियां तथा बेलें खुदी हुई हैं। गोपियों का नृत्य, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और उनकी

पत्नियां तथा समुद्र-मंथन के दृश्य अत्यंत कलापूर्ण हैं ।

यहां लक्ष्मीनरसिंह स्वामी और अंडाल का विवाहोत्सव तथा रथोत्सव आगम शास्त्र के अनुसार चैत्र मास में बारह दिन तक प्रतिवर्ष मनाया जाता है । बंदल सेवा या बैलगाड़ियों की पूजा चैत्र की पूर्णिमा को होती है । छोटी-बड़ी, पुरानी और बड़ी हजारों गाड़ियां इस दिन धोयी जाती हैं और उनके सब हिस्सों को लाल-सफेद रंग से चित्रित किया जाता है और उन पर आम के हरे पत्तों और रंग-बिरंगे कागज के तोरण बांधे जाते हैं । बैलों को भी नहलाया जाता है । और फिर विविध रंगों से सजाया जाता है । बैलगाड़ियों की दौड़-प्रतियोगिता होती है । ढोल-बाजों का शोर और बैलों को हांकने-पुचकारने की आवाजों से सब लोग उल्लसित और उत्तेजित हो उठते हैं । छोटी-मोटी दुर्घटनाएं मनोरंजन में और भी वृद्धि करती हैं । पहाड़ी के चारों ओर लंबी-चौड़ी और समतल भूमि होने के कारण गाड़ियों की पागल दौड़ के कारण बड़ी दुर्घटनाएं नहीं होती हैं । सुबह के तीन बजे रथोत्सव मनाया जाता है । भक्तजन मशालों से पथ को आलोकित करके अपना वचन पूरा करते हैं और पहाड़ी की चोटी से देव-प्रतिमा को जुलूस में लाकर रथ में रखा जाता है । सारा पहाड़ी क्षेत्र इन मशालों के प्रकाश से जगमगा उठता है । इस त्योहार के अवसर पर लगभग पच्चीस हजार लोग इकट्ठे होते हैं और यह मेला तेरह हजार एकड़ में लगता है ।

(13) मेदारम, वारंगल जिले के मुलुगु तालुके का एक वन क्षेत्रीय छोटा-सा गांव है । यहां दो वर्ष में एक बार माघ पूर्णिमा से पहले तीन दिन तक बहुत बड़े पैमाने पर सम्मक्का जात्रा समारोह मनाया जाता है । सम्मक्का एक आदिवासी देवी है अतः इसके पुजारी और संरक्षक कोया जाति के लोग होते हैं । त्योहार के अवसर पर मुलुगु क्षेत्र के सभी आदिवासी तथा हजारों हिंदु यहां इकट्ठे होते हैं । देवी की कोई स्थायी प्रतिमा नहीं है । कोया जाति के एक लड़के को त्योहार से पहले देवी दिखायी देती हैं और वह एक सप्ताह तक बिना कुछ खाये और सोये जंगल में भटकता हैं और फिर सिंदूर की दो पिटारियां ले आता है जो साम्मक्का उसकी लड़की सारक्का की प्रतीक होती है ओर दोनों बांस के एक टुकड़े से बंधी होती हैं । इसे पेड़ के नीचे मिट्टी के चबूतरे पर गाड़ दिया जाता है । यद्यपि कोया लड़का शेर, चीते, बाघ और सांपों से भरे जंगल में सप्ताह भर भटक कर देवी के साथ सही-सलामत लौट आता है । यह देखा गया है कि जो लड़का देवी को लाता है, वह आम तौर पर उसी साल मर जाता है । संयोग से कोई बिरला ही बचता है ।

जानवरों की बलि दी जाती है और मनौती पूरी जाती है । मादक पदार्थों का सेवन व्यापक रूप से किया जाता है । सैकड़ों लोग, जिनमें प्रायः देवी की आत्मा प्रवेश करती है, वहां जाते हैं और रास्ते भर उन्मत्त होकर नाचते हैं । भक्तजन सैकड़ों किलोमीटर

चल कर या बैलगाड़ियों पर आते हैं। आजकल विभिन्न केंद्रों से स्पेशल बसें भी चलायी जाती हैं। लोग अपने बच्चों के नाम साम्मक्का और सारक्का के नाम पर रखते हैं। देवी का विशेष चढ़ावा गुड़ होता है जिसके बड़े-बड़े ढेर लग जाते हैं। जो लोग वचन पूरा करते हैं वे अपने वजन के समान गुड़ देते हैं और गुड़ को ही प्रसाद के रूप में बांटा जाता है। प्रतिदिन एक लाख से अधिक आदमी जमा होते हैं।

(14) खम्भाम जिले के स्वतंत्र उपतालुका नुगूर में तेगडा नामक स्थान पर भद्रकाली और वीरभद्रस्वामी के मंदिर हैं। भद्रकाली और वीरभद्रस्वामी का विवाह-उत्सव माघ महीने के कृष्ण पक्ष के तेरहवें और चौदहवें दिन मनाया जाता है। त्रयोदशी की सुबह भगवान वीरभद्रस्वामी को बाजों-गाजों के साथ गोदावरी पर ले जाया जाता है जो इस स्थान से लगभग तीन किलोमीटर दूर है। यहां उसका अभिशेक किया जाता है और फिर उसे वापस मंदिर में लाया जाताहै। इसके बाद भगवान के आगे सुंकू को मापा जाता है। सुंकू की व्याख्या इस प्रकार की गयी है :

देवता की मूर्ति के सामने कुछ चावल मिट्टी के कोरे घड़े से मापे जाते हैं और उन्हें नये बरतन में डाल दिया जाता है। अब इस पर मिट्टी का ढक्कन रखकर इसे कपड़े से लपेट दिया जाता है। कपड़े की गांठ पर देवता की मुहर लगा दी जाती है और फिर बरतन को देवता की चौकी की बाईं तरफ रख दिया जाता है। शाम को देवता का जुलूस निकलने से पहले बरतन को खोल दिया जाता है और फिर वही व्यक्ति चावलों को उस घड़े से मापता है। सामान्यतया, जितना चावल सुबह मापा गया था, उससे ज्यादा बरतन में पाया जाता है। यदि चावल की मात्रा बढ़ी हुई पायी जाये तो इसे शुभ लक्षण मान कर त्योहार मनाया जाता हे। त्योहार के एक कार्यक्रम के रूप रात के ग्यारह बजे जुलूस निकलता है और रात भर चलता है।

जुलूस में कुछ नरसलु (लोहे की सलाख या ज्योति) को अपनी जीभ या गालों के आर-पार करते हैं। नारियल, गुड़, फल और कद्दू की भेंट चढ़ाई जाती है। कुछ भक्तजन गोदावरी में स्नान करके उपवास और रात-जागरण करते हैं। कुछ भक्तजन आग पर भी चलते हैं। उत्सव में भाग लेने में वीरशैवों की संख्या अधिक होती है।

(15) नालगोंडा जिले के हुजूर नगर तालुके में मल्लचेरुवु नामक स्थान पर शंभुलिंगेश्वर स्वामी, कामेश्वरी देवी, गंगादेवी, आंजनेय स्वामी, वीरभद्र वेंकटेश्वर स्वामी, मुत्यालम्बा, अंकम्मा और मैसम्मा के मंदिर हैं। इनमें से भगवान शंभुलिंगेश्वर स्वयंभू हैं, अतः अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। लिंग के ऊपर लगभग पांच सेंटीमीटर की परिधि के सुराख में हमेशा पानी भरा रहता है। पानी न तो कभी सुराख से बाहर निकलता है और न निश्चित सतह से नीचे जाता है। लिंग जो कभी छोटी ककड़ी के आकार का

था अब लगभग छः फुट की ऊंचाई का हो गया है। प्रत्येक फुट पर एक गोल रेखा लिंग पर प्राकृतिक रूप से बन जाती है। अब तक बनी प्रत्येक रेखा को सिंदूर बिंदुओं से सजा दिया गया है। कहा जाता है कि सातवीं रेखा भी बन रही है अर्थात् लिंग अब भी बढ़ रहा है। लिंग के ऊपर सुराख में जमा पानी को लोग बड़ी श्रद्धा के साथ तीर्थम् (पवित्र जल) के रूप में ग्रहण करते है।

शंभुलिंगेश्वर का विवाहोत्सव महाशिवरात्रि के अवसर पर पांच दिन तक मनाया जाता है। पहले दिन प्रभाएं जिनमें से कुछ लगभग बीस मीटर ऊंची होती हैं, जुलूस में ले जायी जाती हैं। कल्याणम् (विवाहोत्सव) गांव का जुलूस रथोत्सव, पोन्नासेवा, बसंतोत्सव, पर्वलिम्पु सेवा के कार्यक्रम अगले दिन किये जाते हैं। नकद रुपये, चांदी और सोने के आभूषण, नारियल, फल, फूल देवता को भेंट में चढ़ाये जाते हैं। भक्तजन अपनी मनौती पूरी करने के प्रतीक स्वरूप गाय, बछड़े भी भेंट करते हैं जिन्हें ध्वज स्तंभ से बांध दिया जाता है। विश्वास किया जाता हैं कि निस्संतान स्त्रियां यदि नीले कपड़ों के साथ पांच दिन तक पूजा करें तो इन्हें संतान-प्राप्ति होती है। उपवास और जागरण भी किये जाते हैं। आस-पास के क्षेत्रों से लगभग दस हजार भक्तजन शिवरात्रि के अवसर पर इकट्ठे होते हैं। मंदिर के पास लगभग चालीस एकड़ भूमि पर मेला लगता है जिसमें पशु-मेला भी शामिल है।

6

मौखिक साहित्य

महाभारत के रचयिता व्यास ने कहा था कि जनपदों अर्थात् सामान्य लोगों की तुलना विद्वानों से और यज्ञ करने वालों से की जा सकती है । इन सामान्य लोगों द्वारा जो गीत या कविता गायी जाती है उसे लोकगीत कहते हैं और अधिकांश लोक-साहित्य इसी रूप में पाया जाता है । कुछ विद्वानों ने, जिनका झुकाव शास्त्रीय साहित्य की तरफ होता है, लोक-साहित्य को स्थानीय या देशी साहित्य कहा है और वे साधारण आदमी को संस्कारहीन आदिम मानते हैं । किंतु यदि हम लोक-साहित्य पर गंभीरता से विचार करें तो हम देखेंगे कि इसमें ग्राम्य जनता की धार्मिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक मानसिकता की सही अभिव्यक्ति होती है । अतः यह प्रत्यक्ष भी होता है और रोचक भी ।

तेलुगु साहित्य को दो मुख्य भागों में बांटा गया है । मार्ग और देसी । पहला, किसी लेखक की कृति होता है और उसमें शास्त्रीय कविता होती है । दूसरा, अगली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित, किसी समुदाय की उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति होता है । इन दोनों के बीच बहुत कम समानता होती है । शिक्षित लोगों की कविता में सुसंस्कृत अभिव्यक्ति की कलात्मकता और लावण्य होता है । लोक-कविता में स्वाभाविक अभिव्यक्ति और मिट्टी की गंध होती है ।

चाइल्ड के अनुसार, अंग्रेजी का "फोक" शब्द एक व्यापक शब्द है । इसमें सारे राष्ट्र या लोगों के बहुत बड़े समुदाय का भाव निहित है । तेलुगु प्रदेश के इस भू-भाग में इस प्रकार के लोग सदियों से रह रहे हैं । वे एक सामुदायिक जीवन बिताते हैं । मानव जीवन के हर्ष-उल्लास, दुख-दर्द और चुनौतियों में वे समान भागी होते हैं ।

लोक-साहित्य में वे सब चीजें आ जाती हैं जिनका लोगों के जीवन से संबंध होता है, जैसे पुराण, कथाएं, विश्वास, अंध-विश्वास, रस्मोरिवाज, झाड़-फूंक और जादू टोना, दार्शनिक ज्ञान, कहावतें, नाटक, त्योहार आदि ।

साहित्यिक समीक्षकों ने इस विचार की पुष्टि की है कि शास्त्रीय साहित्य के लिखे

जाने से पहले गीत, गाथा और प्रगीत का ही साहित्य में प्राधान्य था। अत्यंत उल्लास और भावावेश के क्षणों में ही स्त्री-पुरुष गाने और नाचने लगते हैं तथा उसके लिए संगीत गढ़ा जाता है। इन गीतों के पाठ में अलंकार या शैलीगत चमत्कार नहीं होते हैं।

गीत, अर्थात् शब्दों की लयात्मक बानगी किसी एक व्यक्ति द्वारा गढ़ी जाती है और बहुत से लोग मिल कर उसे दुहराते हैं। लोक-कविता का जन्म इसी रीति से होता है। इसके बाद गीत लोगों की स्मृतियों में अंकित हो जाता है। लोक-साहित्य का उद्गम किसी एक लेखक में नहीं ढूंढा जा सकता। हेमनडोर्फ ने अपनी पुस्तक "दि रेड्डीज आफ दि बिसन 'हिल्स" में इसी तरह के एक गीत का अंग्रेजी अनुवाद दिया है जिसका हिन्दी रूपांतर इस प्रकार है :—

पहाड़ी के ऊपर, लंबी पूंछ वाला बंदर
वादी में घूमता है पेड़ों का रीछ
रीछ जिसकी पूंछ है
नाले के किनारे भागता है बंदर
बंदर जिसकी पूंछ नहीं है
चींटियों और मच्छरों ने कमर कस कर
शक्कर की देवी का घर घेर लिया है
मुत्यालम्मा, गांव की मां भी
शक्कर की देवी के विरुद्ध हमले में शामिल हो गयी
उनकी जीत हुई और वे लौट आये

तारों को देखो
सूरज को देखो
दिन निकल रहा है
सूरज ऊपर उठ रहा है
प्रकाश आ रहा है
तेज बिखर रहा है

यह गीत अक्सर विवाह के अवसर पर गाया जाता है। वर-वधू के संबंधी इसे दोगाने के रूप में गाते हैं।

इसी लेखक ने चेंचुओं के विषय में लिखते हुए एक समूह-गान का जिक्र किया है

जिसे लड़कियां नृत्य करते हुए गाती हैं। मूल पाठ, जो लेखक ने रोमन लिपि में दिया है, नीचे देवनागरी लिपि में दिया जा रहा है। कोदन्न और मदन्न नरिकेलो दो भाई हैं जिनका निवास आकाश में माना जाता है :—

वेटा पोय्ये रामुलु	नारिकेलो
बांगरी पासेला	,,
बांगरी बोडले बाकु	,,
पिडिकेडु बाडुल तिसि	,,
कोनागोरा वोलिस	,,
चिक्किडु पुवुलु	,,
सिरिगे टोमी	,,
कोनागोरा बिरयामोलिस	,,
मचेटा पोटेसिरा	,,
अम्माल वा यम्मा	,,
निर्लैना इष्यावम्मा	,,
मी अम्मा मरडाला	,,
नेनु उंडा मराडी	,,

इन गीतों का समाज द्वारा आशु रचना की गयी है। पंक्तियों को कितनी ही बार दुहराया जा सकता है। तथापि, जहां समय और ताल गति भिन्न-भिन्न होती है, वहां पुनरावृत्ति की एक निश्चित बानगी होती है। विभिन्न समयों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा दुहराये जाने के फलस्वरूप गीत का मूल पाठ कुछ शब्द जुड़ जाने से बढ़ जाता है और इस प्रकार कालांतर में गीत बदल जाता है किंतु हम यह बात निश्चित रूप से नहीं कह सकते हैं कि लोक गीतों का उद्गम हमेशा समुदाय ही होता है। गांव का युवक जो धीरे-धीरे किंतु निरंतर गति से अपने रस्ते पर चली जा रही भूसा-गाड़ी पर लेट कर प्रसन्नमन: स्थिति में गीत गाता है, किशोर ग्वाला जो जमींन पर या पानी में भैंस की पीठ पर हथेली से ताल देता हुआ गाता है कपड़े के झूले में बच्चे को झुलाती हुई अपनी ही लोरी गाती हुई मां, तालाब से सिंचाई के लिए पानी खींचते हुए प्रसन्न हो कर गाने वाला युवक प्राय: तत्क्षण बनाये हुए गीत गाते हैं। जगत पर संतुलित बैठकर कुएं से पानी की बाल्टी खींचने वाला आदमी (गांव का एक आम दृश्य है) भी लोक-संगीत में अपना योगदान देता है। ये गीत पूर्वचिंतन का परिणाम नहीं होते। इनमें शब्द-संगठन का अभाव होता है। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा दुहराये जाने से मूल

पाठ में सुधार होता जाता है; यहां तक कि यह लोक-साहित्य का आधार बन जाता है।

मौखिक पुनरावृत्ति से कालांतर में गीत बदल जाता है किंतु उसकी संगीतबद्धता बनी रहती है। किसी एक व्यक्ति द्वारा बनाये गये लोक-गीत भी कालांतर में बदल जाते हैं और उनमें वृद्धि एवं सुधार हो जाता है। "जत्तु" गीत भी इसी श्रेणी में आते हैं। जब कभी हम लोक-गीत का लयपूर्ण मधुर गायन सुनते हैं हमारे मन में गीत के रचयिता का नाम जानने की जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती। यदि किसी गीत के रचियता की खोज की भी जाये तो यही हाथ लगता है कि उसका रचयिता सदियों पहले का कोई अज्ञात व्यक्ति है।

लोग उस गीतकार का गीत गाते हैं जो उन्हें प्रिय होता है, चाहे वह दैनिक जीवन की कोई सामान्य घटना हो या समकालीन घटना अथवा पूर्वजों का शौर्यकृत्य। गीतों में उस विषय के प्रति उनका विश्वास, प्रेम और निष्ठा व्यक्त होती है। इन गुणों के कारण लोक-साहित्य शास्त्रीय लेखकों के लिए भी प्रिय बन जाता है। अनेक शास्त्रीय लेखक अपनी रचनाओं के लिए लोक-साहित्य से मुमभीम ग्रहण करते हैं। लोक गीतों के सरल, अतुकांत छंदों को कवि अपना लेते हैं। प्रथम तेलुगु कवि नन्नय भट्ट ने इस प्रकार के छंदों का अच्छा उपयोग किया है। गांव की परिस्थितियों का वर्णन करने में शास्त्रीय लेखक लोक-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। शास्त्रीय लेखकों पर लोक-साहित्य का प्रभाव काफी अधिक देखा जाता है।

नन्नयपूर्व लेखों से, इन छंदों से मिलती-जुलती रचनाओं के अस्तित्व का संकेत मिलता है। नन्निचचोडा ने अपनी कृति "कुमारसंभवमु" में अंकमालिका, गोडुगीतामु, रोकटीपाटा और उय्यालपाटा का उल्लेख किया है जो लोक-गीतों की रचनाएं हैं। पालकुरिकि के सोमनाथ ने अपनी पुस्तक "पंडिताराध्य चरित्र" में एक दर्जन से अधिक लोक-गीतों का जिक्र किया है। उन्होंने अपनी कृति "बसवपुराण" में भी यह स्वीकार किया है कि उसे काव्य-कृति का स्रोत वास्तव में बसव के शोर्य-कार्यों से संबंधित एक पुराना लोक-गीत है।

तेलुगु के लगभग सभी शास्त्रीय कवियों को समकालीन लोक-गीतों का उल्लेख किया है। प्रारंभिक कवि तल्लपाक अन्नमाचार्य ने (1424-1503) जो "पद कविता पितामह" के नाम से प्रसिद्ध थे, अपने समय में प्रचलित विभिन्न लोक-गीतों की बानगी पर भजन लिखे हैं। उनके पौत्र पेंद तिरुमलाचार्य ने "एला", "गोबिल्लु" और "चंदा-मामा पाटलु" आदि के गीतों के छंद और रचना-विधान का प्रतिपादन किया। इस प्रकार अनेक प्राचीन कवियों की रचनाओं में लोक-गीतों के अस्तित्व का संकेत देने वाले उल्लेख मिलते हैं। फिर भी इस समय उपलब्ध लोक-गीत चौदहवीं शताब्दी से पहले

के नहीं हैं। इनमें से अधिकांश अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। सरकारी संस्थाओं और व्यक्तियों की उदासीनता एवं उपेक्षा के कारण हजारों पुराने लोक-गीत नष्ट हो चुके हैं। हाल ही में वर्षों में मुद्रण कला उत्तर-त्यागराज अवधि (1767-1847) के लोक-गीतों को सुरक्षित रखने में परोक्ष रूप से सहायक हुई हैं।

लोक साहित्य का विषय-क्षेत्र बहुत व्यापक है। यहां उसका संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

पौराणिक विषय

लोक-साहित्य के लेखकों ने अनेक स्रोतों से अपने विषयों को चुना है जैसे, वेदों में आयी छोटी-छोटी कहानियां, प्रथम महाकाव्य रामायण में विस्तार से कही गयी कहानियां, महाभारत के विस्तृत पटल पर अंकित राज-घरानों की कथाएं, गुणाढ्य और उसके रूपांतरकारों के "कथा सरितसागर" में आयी कहानियां और पुराणों में आयी असंख्य कथाएं।

"कुचकोंडा रामायण", "शारदा रामायण", "धर्मपुरी रामायण", "मोक्षगुंडा रामायण", "सूक्ष्म रामायण", "संक्षेप रामायण", "गुट्टनदिवि रामायण", "चित्ती रामायण", "श्रीराम दंडमुलु", "रामायण गोबीपाटा", "श्रीराम जाविलि", "अदवि गोविंदनामलु", "संत गोविंदनामलु", "पेंदलि गोविंदनामलु", "सेतु गोविंदनामलु", आदि में रामायण की संपूर्ण कथा कही गयी है। "संत कल्याणम्", "पुत्रकामेष्टि", 'कौशल्या बयकलु", "श्रीरामुल उग्गुपाटा", "राघव कल्याणम्", "रामुलावरि अलुका" "सुंदर कांड पदमु", "ऋषला आश्रममु", "सुग्रीव विजयम्", "कोबेला रायबरम", "अंगद रायबरम्", "लक्ष्मण मूर्छा", "लंका यगम", "गुह भरतुला अग्निप्रवेशम्", "श्री रामपट्टाभिषेकम्", "लक्ष्मणदेवरनाव्वु", "उर्मिला देवीनिद्रा',, "कुशलयकिम्" "कुशलव युद्धम्", "पातालहोमम्", "षटकण्ठ रामायणम्", आदि रचनाओं में रामायण कथा के अंशों का उपयोग किया गया है।

बहुत से गीतों का मुख्य विषय सीता के जीवन की घटनाओं को चित्रित करना है। "सीता पुट्टका" (सीता जन्म), "सीता कल्याणम् (सीता-विवाह), सीतानु अत्तावारिंतिकमपुट (सीता का ससुराल भेजा जाना), "सीता समार्त्त" (सीता का कैशोर्य), "सीता शुभगोष्ठी" (सीता संवाद), "सीता गादिया" (सीता का द्वार बंद करना), "सीता वामनगुंतलु" (सीता के खेल), "सीतम्मावरी आलूका" (सीता का रूठना), "सीता-वासंतम्" (सीता की होली क्रीड़ा), "सीता देगलीमुतालु" (सीता की आंख-मिचौनी), "सीता सुराती" (सीता का पंखा), "सीता मुद्रिकलु" (सीता की मुद्रिका), "सीता अरावलु" (सीता की पहचान), "सीता अग्नि प्रवेशम्" (सीता की अग्नि परीक्षा),

"सीता वेविल्लु" (सीता का गर्भधारण) और इसी प्रकार की अन्य कई रचनाएं इस श्रेणी में आती हैं।

इसके बाद महाभारत की कहानियाँ आती हैं : "नल चरित्र", "देवयानी चरित्र", "सुभद्रा कल्याणम्", "सुभद्रा सारि" (सुभद्रा के उपहार), "धर्मराजु जुदम्" (धर्मराज की धुत-क्रीड़ा), द्रौपदी वलुवलु (द्रौपदी का चीर), पांडुपाटा (फल की गीत), "विराट वर्वम्", "पदम व्यूहम्", "भगवदगीता", "सावित्री कथा", "शशिरेखा परिणयम्", "गायोपाख्यानम्", "पाराशर मत्स्यगंधी संवादम्" आदि कहानियां बहुत लोकप्रिय हैं।

इसी प्रकार भागवत की कहानियां भी लोगों में बहुत लोकप्रिय हुई हैं। श्रीकृष्ण की प्रेम-लीलाओं का आकर्षण लोगों में हमेशा रहा है और उनकी बालसुलभ शरारतों ने लोगों को भावविभोर होकर गीत गाने के लिए प्रेरित किया है। भागवत की अनेक कहानियां बहुत लोकप्रिय हैं जैसे: "प्रहलाद चरित्र", "वामन चरित्र", "अम्बरीषोपाख्यान", "गजेंद्रमोक्षम्", "श्रीकृष्ण जन्मम्", "कृष्ण चंदुलु (कृष्ण का कलेवा), "बालकृष्ण लीलालु", (बाल लीलाएं), "गुम्मडु पाटा" (गुम्मडु का गीत), यशोदा-कोंगपाटा (यशोदा का सारस का गाना), "गोपिका स्त्रीला जलक्रीडलु" (गोपियों की जलक्रीड़ाएं), "रुक्मणी कल्याणम्" "चिलुकरयाषरम्" (तोते का संदेश), "सत्यभामा सरसमु" (सत्यभामा का मनोविनोद), "रुक्मिणी मुच्चट (रुक्मिणी चर्चा), रुक्मिणी देवी सीमंतमु" (गर्भधारण के लिए रुक्मिणी की आत्मशुद्धि), "पारूजापल्लवी", (पारिजात पुष्प को धरती पर लाने की कथा), "उषास्वप्नमु", (ऊषा का सपना), "कुचेलोपाख्यानमु" और "भ्रमरगीतलु" (भ्रमर-गीत) आदि।

अन्य महाकाव्यों और पुराणों की कहानियों पर निम्नलिखित रचनाएं उपलब्ध हैं, जैसे : "सत्यहरिश्चंद्र", चंद्रामती का गीत, गाय का गीत, "दत्तात्रेयज्ञानम्", "दक्ष यज्ञम्", "गंगाविवाहम्", "गंगा-गौरी संवादम्", "सवतुला कय्यम्" (सौतों का झगड़ा) "ईश्वर भृंगी संवादम्", "मेनका-पार्वती संवादम्", "लक्ष्मी पार्वती संवादम्", "त्रिपुरासुर संहारम्" (त्रिपुरासुर वध), "सुरभंदेश्वरम्", "मार्कण्डेय सप्नम्", "सिरियालराज चरित्र", "भल्लनराज कथा", "कोमिरेल्ली माल्लान्ना कथा, "वरदराजु पेंदलिपाटा", (वरदराज के विवाह का गीत), "अंडाल चरित्र", "श्रीरंगमहात्म्य", "तिरुमंतरामु पाटा", (पवित्र मंत्र का गीत), "दशावतारमुला पाटा", (दशावतारों का गीत), "लक्ष्मी देवी सोंगतलता", (लक्ष्मी देवी का चौपड़ खेलना), लक्ष्मी देवी वर्णम् (लक्ष्मी देवी का वर्णन), "वेंकटेश्वरुला वेटा (वेंकटेश्वर का शिकार खेलना) "चेंचटा कथा", एकादशी महात्म्यम्", "वराहावतार चरित्रम्", "नुतयेंनिमिडि दिव्य स्थलमुलु (108 तीर्थ स्थल), वेंकटेश्वर महात्म्यम्" आदि। इन सब कहानियों की एक सामान्य विशेषता यह है कि लोग इनके पात्रों के साथ तादत्म्य स्थापित कर लेते हैं।

इन कहानियों में अंतर दिखायी देता है वह इस बात का सूचक है कि ये लोकप्रिय पात्र भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के कारण भिन्न-भिन्न प्रभाव लोगों पर डालते हैं।

लोक-साहित्य के लेखक उपर्युक्त रचनाओं के पात्रों को लेकर आधुनिक शिल्प में गीत कहानी की यथार्थ पूर्ण रचना करते हैं। घटनाओं को, समकालीन घटनाओं से जोड़कर इन्हें सामाजिक मोड़ दिया जाता है और परंपरागत तेलुगु समाज के रस्मों-रिवाजों को कहानी में गूंथा जाता है। कुछ पात्र जो शास्त्रीय लेखकों द्वारा उपेक्षित रह जाते हैं, लोक-साहित्यकार उनकी पुनर्सृष्टि करते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन के लिए मौलिक प्रतिभा की आवश्यकता होती है और सामान्यतया प्राचीन ग्रंथों के अनेक पात्रों को तेलुगु प्रदेश का निवासी बताया गया है। उदाहरण के लिए "रामायण" में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला का उल्लेख केवल विवाह के समय प्रथम सर्ग में हुआ है। महाकाव्य के लेखक ने अन्यत्र उनका फिर उल्लेख नहीं किया। किंतु लोक-साहित्यकारों ने उसकी कहानी विस्तार से सुनायी। उसकी अनंत मूक पीड़ा को उन्होंने महानता की चोटी तक पहुंचाया और बनवास की अवधि पूरा होने पर पति से उसके मिलने को कलात्मक उपसंहार का रूप दिया। उसके चरित्र की विशेषता है, उसका पतिव्रत धर्म, और उसे तमाम श्रोताओं की सहानुभूति मिलती है। रामायण की नायिका सीता को भी तेलुगु प्रदेश की पुत्री के रूप में चित्रित किया गया है। लोक-नायक इन पात्रों का चरित्र-चित्रण करते समय ग्राम्य समाज की सीधी-सरल रुचियों को तुष्ट करते हैं और साथ ही महाकाव्य की गरिमा को भी बनाये रखते हैं।

ऐतिहासिक विषय

लोक-साहित्य के भंडार में ऐतिहासिक गाथाएं भी हैं। विगत काल से स्थानीय नायकों के आदर्श जीवन, उनके साहसपूर्ण कारनामे, उनके शगल आदि को बड़ी कुशलता से लोक-साहित्यकारों ने चित्रित किया है। इससे भी बड़ी बात यह कि उनके शूरवीरतापूर्ण कारनामों को बड़े जोश और भावावेश के साथ सुनाया जाता है। श्रोता हमेशा इन गीतों से अभिभूत होते हैं। इस प्रकार की गाथाओं में से सबसे प्रसिद्ध गाथाएं हैं "काटमराजु कथा", "पलनाटी वीर चरित्र", और "बोब्बिलि कथा।" "पालनाडु" और "काटमराजु" के गाथा-चक्रों में दर्जनों कथाएं हैं।

मुहम्मद बिन तुगलक से युद्ध करने वाले, कम्पिल के राजकुमार कुमारराम की कहानी आंध्र और कर्नाटक दोनों प्रदेशों में प्रचलित हैं। इसी प्रकार देसिंगुराजु की गाथा आंध्र और तमिलनाडु में प्रचलित हैं। मियां साहेब, सोमनाद्रि, रामेश्वरराव, रानी शंकरम्मा, सवाई वेंकरेड्डी, कर्नूल नवाब, सदाशिव रेड्डी, पर्वताला मल्लारेड्डी,

सर्वाई पापडु, बालगुरी कोंडलरायुडु की गाथाएं तेलंगाना क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय हैं।

अल्लूरि सीतारामराजु अर्वाचीन समय के नायक हैं जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया था। उनके शूरवीरतापूर्ण कारनामों का वर्णन करने वाली गाथाएं सारे आंध्र में बहुत लोकप्रिय हैं। "पेड्डापुरम् कोडिपुंजुल" कथा (जिसमें पेड्डापुरम् की मुर्गा-लड़ाइयों का वर्णन होता है) तटवर्ती आंध्र में बहुत लोकप्रिय है। "बंगरू तिम्मराजु" "आरे मराठिलु", "बालगुरि कोंडलराव" और ,'पर्वताला मल्ला-रेड्डी" की गाथाएं अर्द्ध ऐतिहासिक हैं।

आध्यात्मिक विषय

आध्यात्मिक गीत तेलुगु में बड़ी संख्या में है। इन गीतों को मुक्ति के तीन मार्गों ज्ञान, कर्म और भक्ति के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। भक्ति-गीतों को भी शैव भक्ति और वैष्णव भक्ति के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है। शैवों के प्राचीन भ्रमरगीतों में से कुछ अब भी मिलते हैं। भद्राचल रामदासु, तुमु नरसिंहदासु, परमकुस-दासु नित्तला प्रकाशदासु, ताटंकम् वेंकटदासु आदि के गीत घुमक्कड़ याचकों तथा लोक गायकों के मुख्य विषय रहे हैं।

इनके अतिरिक्त संकीर्तन, पदम[1],जागरण गीत (मेलु कोलुपुलु), लाड-प्यार के गीत (लालीपाटलु), लोरी (जोलापाटलु), कोलटम् और मंगल आरती, को भी आध्यात्मिक गीतो में सम्मिलित किया जा सकता। कुछ कोलाटम् गीतों में मधुरा भक्ति (भक्ति एवं श्रृंगार का मिश्रण) होती है। ये गीत लोक-साहित्य, लोक संगीत और लोक नृत्य में पाये जाते हैं। मंगल आरती गीत सभी देवी-देवताओं की प्रशस्ति में गाये जाते हैं। इनका उद्देश्य देवता का वर्णन, प्रशस्ति, सेवा, भक्ति आदि होता है।

दार्शनिक गीत भी अनगिनत हैं। इन्हें तत्लु कहा जाता है क्योंकि इनका विषय तत्वम् (तुम वही हो) होता है। ये अधिकतर एक देववादी होते हैं और प्रायः गैर-ब्राह्मण में लोकप्रिय होते हैं। चूंकि एक देववादी (या अद्वैतवाद) जीवन और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करता है। इसलिए इन दार्शनिक संवादों में समाज में पाये जाने वाले ऊंच-नीच के भेद के लिए कोई स्थान नहीं होता। इन तत्वालु गीतों में ऊंची जाति के लोगों के अनुष्ठानों और कर्मकाण्ड की आलोचना की जाती है। इन में रहस्यवाद होता है। एगंटि लक्ष्मैया, पोतुलूरि वीरब्रह्म वेमना, दुदेकुला सिद्धप्पा, शेषाचलस्वामी, भोजदासु एडलारामदासु आदि महात्माओं एवं रहस्यवादियों के गीत सारे आंध्र में सामान्यतया सुने जाते हैं :

---

1. स्वर और साहित्य की लंबी रचना शैली अर्थपूर्ण कविता जिसकी विशेषता होती है।

सीतापाटा, नारायण शतकामु, रामराम शतकामु, आत्मबोधामृत तत्वमुलु, कलिप्रमाण तत्व कीर्तनलु, कालज्ञान तत्वलु, तारकामृतसरमु, श्रीराम गीता, गुरूश्रीनागमु, ब्रह्मानंद कीर्तनलु आदि ऐसे गीतों के कुछ प्रकाशित संग्रह हैं। ये गीत सामान्यतया राजयोग, अचल दर्शन और गुरू-भक्ति शुद्ध नैतिकता, समाज-सुधार, अहिंसा वैराग्य और सदाचार की शिक्षा देते हैं और इनमें जातिप्रथा की भर्त्संना की जाती है। हिंदुओं में कला और पुराणों में बताये गये धार्मिक तप, व्रत, अनुष्ठान और कर्मकाण्ड का वैदिक कर्मकाण्ड की अपेक्षा अधिक पालन किया जाता है। यह कर्मकाण्ड स्त्रियों द्वारा सारे भारत में अधिक अपनाया जाता है। अतः इनसे संबंधित अधिकांश लोक-साहित्य स्त्रियों के लोकगीतों के रूप में होता है। इस कर्मकाण्ड का उद्देश्य हर जाति के लोगों तथा स्त्रियों को पूजा की प्रमाणिकता देना है। वीरशैव और वीरवैष्णव संप्रदायों के लोगों के उत्साह के कारण इस कर्मकाण्ड ने अपनी जड़ें मजबूत कर ली हैं।

मदन द्वादशीव्रतम्, नित्यादानम् नोमु, दीपदानमु नोमु, मोचेति पदममुनोमु, चतुर्मास्यव्रतम्, कृत्तिका दीपलानोमु, पेंदलि गुम्माडि नोमु,वरलक्ष्मीव्रतम्, तुलसीनोमु, लक्षवत्तुलनोमु, कामेश्वरी व्रतम्, श्रावण शुक्रवारपुनोमु, श्रावणमंगलवारव्रतम, आदि से संबंधित गीत भी बहुत लोकप्रिय होते हैं। ऊंची जाति के लोग लक्ष्मी और गौरी के व्रत रखते हैं तो छोटी जातियों के लोग छोटी देवी-देवताओं को और ऐलम्मा, मैसम्मा, पोचम्मा, बालम्मा आदि ग्राम देवियों की पूजा करते हैं। ऐलम्मा पुराणों में वर्णित परशुराम की मां रेणुका ही है।

इन दार्शनिक गीतों में गीता का ज्ञान सरल शब्दों में दुहराया गया है और लोककवि गा-गाकर आध्यात्मिक साधना के सारी विधियों की शिक्षा देते है। इन गीतों की सरलता और ऋतुता को देखते हुए गायकों की भी तारीफ की जानी चाहिए और ग्रामीणश्रोताओ की भी जो इन रचनाओं को सुनते-सुनते कभी उकताते नहीं हैं। कई बार इन गीतो में वीरगाथाओं के प्रसंग वर्णित होते हैं। ये वीरनायक लोगों की स्मृतियो में अमर रहते हैं और लोग उनके आदर्शों से हमेशा प्रेरणा ग्रहणकरते हैं।

सर्वाधिक लोकप्रिय गीत स्त्रियो के गीत होते हैं। गीत गाना उनके दैनिक कार्य का एक अंग होता है। उनकी दिनचर्या में जो प्रात काल से शुरू होकर रात तक चलती है, गीत चलता रहता है और उनके जीवन का एक हिस्सा बन गया है। घर का आंगन बुहारते समय, पानी छिड़कते हुए, फर्श पर रंगोली बनाते हुए, बच्चे को पालने में झुलाते हुए, धार्मिक क्रिया-कलाप करते हुए, खेतों में काम करते या सुहनली फसल को निहारते हुए और इसी प्रकार के अनेक अवसरों पर घर की गृहणी आनंद के लिए अथवा व्यस्त जीवन के बोझ को कम करने के लिए गाती हैं। गीत उनके हृदय से अना-

यास प्रस्फुरित होता है। इन गीतों में काव्यात्मक बिंबों की अपेक्षा जीवन की याथार्थता अधिक मुखर होती है।

मातृत्व के विषय पर असंख्य गीत हैं। निस्संतान स्त्रियों की पीड़ा, संतान प्राप्ति के लिए देवताओं की व्रत-पूजा में उठाये गये कष्ट, देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उनकी प्रतिज्ञाएं और बांझ औरतों की दयनीय स्थिति, आदि इन गीतों के विषय होते हैं।

इसके बाद विवाह-गीत आते हैं। विवाह से संबंधित हर छोटे समारोह का भी अपना महत्त्व होता है और इसलिए इसके साथ गीत गाये जाते है। कोटनालपाटलु (धान कूटते समय गाया जाने वाला गीत) नालुगुपाटलु (हरे चने का उबटन लगाते समय गाया जाने वाला गीत), गंधमुपाटलु (चंदन लेप करते हमय गाया जाने वाला गीत), कल्याणापु पाटलु (विवाह गीत), तालुपुदग्गरि पाटलु (दूल्हा-दुल्हिन से या उनके माता-पिता से कुछ मांगते, समय दरवाजा बंद करते हुए गाया जाने वाला गीत), बंतुल पाटलु (गेंद खेलते समय गाया जाने वाला गीत), बुव्वामु पाटलु (विवाह के भोज का गीत), व धुवरूलुपाटलु (वर-वधू का गीत), अलकपाटलु (दूल्हे के रूठने का गीत), मुखमु कोंडुगु पाटलु (वर-वधू के दातौन करते समय गाया जाने वाला गीत), कटनाल पाटलु (उपहार का गीत), मिधुन विडेमुल पाटलु (वर-वधू को पान-सुपारी देते समय गाया जाने वाला गीत), आरिवेनि पाटलु (पवित्र और सुसज्जित मृद्पात्र रखते समय गाया जाने वाला गीत), अप्पागिन्तल पाटलु (वधू को सास-ससुर को सौंपते समय गाया जाने वाला गीत), आदि इस प्रकार के गीतों के कुछ उदाहरण हैं।

विवाह समारोह की बहुत छोटी-छोटी बातों के लिए गीतों का उपयोग किया जाता है। जैसे, सौंदर्य वृद्धि के लिए हल्दी-पाऊडर, तैल-स्नान, झूला, रंगवाला पानी और बिस्तर। इस प्रकार ये गीत लोगों के सामाजिक इतिहास को सही-सही प्रस्तुत करते हैं।

आश्चर्य के विषय

प्रकृति के रहस्यों और अबूझ घटनाओं के प्रति अचरज की भावना का जन-साधारण के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। सामान्य, पार्थिव घटनाओं के साथ भी वे साधारणतया देवी और चमत्कारी तत्वों को जोड़ लेते हैं। जब कोई अविश्वसनीय स्थितियों में से गुजरता है या कोई असंभव काम करना चाहता है तो वह देवता या जादू-टोना, जादुई शीशा, गूढ़ मंत्र, आसमान में उड़ने वाली लकड़ी की खडाऊं या देवी करतब करने वाली अन्य चीजों की ओर झुकता है। ताकि वह उस स्थिति पर काबू पा सके या समस्या को सुलझा सके। भले ही उसकी यह इच्छा कितनी ही असंभव और तर्कहीन हो लेकिन

उसका इन चीजों की तरफ झुकाव स्वाभाविक होता है। मनुष्य की इच्छा के कारण अनेक अद्भुत कहानियां अस्तित्व में आयी है। ऐसी एक सर्वाधिक लोकप्रिय कथा है बालनागम्मा जो सारे आंध्र में प्रसिद्ध है। वस्तुतः यह स्थानीय रामायण है जिसमें नायिका बालनागम्मा का मायला पकीरू द्वारा हरण किया जाता है वह जादू-टोने आदि के कारण अद्भुत शक्तिशाली बन गया है। इसके बाद कम्मावरिपनति-पसल बालराजु कथा का नाम आता है जो अंतर्जातीय विवाह के कारण बहुत लोकप्रिय है। सब से प्राचीन और सुंदर कथा गंधारी की है। इसी तरह "धर्मगदा पमुपाटा", "कम्भोज राजु कथा", बालराजु कथा आदि रचनाएं लोगों में भय और श्रद्धा उत्पन्न करती हैं और इस आदर्श को सामने रखती हैं कि अंतिम विजय सचाई और न्याय की होती है।

करुण रस की कथाएं

अद्भुत रस की तरह करुण रस की भावनाएं भी लोगों की मानसिकता का अंग हैं चूंकि इन कहानियों के विषय भी दैनिक जीवन से लिए जाते हैं, ये कहानियां भी ग्रामवासियों के सामाजिक-नैतिक आदर्शों के ताने-बाने का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए सास द्वारा सताई जाने वाली स्त्रियां, निर्दयी पति के हाथों कष्ट भोगने वाली स्त्रियां, दुष्ट सौतों या ननदों के षड़यंत्रों का शिकार स्त्रियां अथवा अन्य कारणों से भयानक कष्ट झेलती हुई स्त्रियां लोक-गीतों का विषय बनती हैं और ये गीत ग्रामीण लोगों पर जादू की तरह असर करते हैं।

वास्तविक घटनाओं को तेलुगु लोगों ने कुछ और आकर्षक और करुण बना कर प्रस्तुत किया है। इस वर्ग में आने वाली कुछ कथाओं के नाम इस प्रकार हैं :—कन्या-कम्मावरि कथा, कामम्मा कथा, लक्ष्मम्मा कथा, सन्यासम्मा कथा, मंदपेयपापम्मा कथा, एरूकम्मा कथा, तिरुपतम्मा कथा, वीरराजम्मा कथा, एरूकला नानचारी कथा, रामुलम्मा कथा, सरोजिनी कथा आदि।

लोक कथाएं

देश के अन्य भागों की तरह आंध्र में भी लोक-कथा सुनाने का भार अधिकतर परिवार के बूढ़े सदस्यों पर होता है। अधिकांश घरों में यह सामान्य दृश्य है कि दादी-नानी फुर्सत के क्षणों में सामान्यतया शाम के समय या रात को नाती-पोतों से घिरी हुई कथाएं सुनाती हैं। जिन लोक-कथाओं में कल्पना की उड़ान या अचरज का तत्व मुख्य गुण होता है उन्हें बच्चे बड़े ध्यान से सुनते हैं। इन कथाओं से न केवल बच्चों का अपितु बड़ों का भी मनोरंजन होता है। पुरुषों द्वारा सुनाई जाने वाली कहानियां

सामान्यतया हास्य-विनोद और बुद्धि कौशल की होती हैं। इनमें से अधिकतर उपदेशात्मक होती हैं।

तेलुगु लोक-कथाएं तीन श्रेणियों में आती हैं: (1) ऐसी कहानियां जिनके पात्र देवी-देवता होते हैं, (2) ऐसी कहानियां जिनके पात्र पशु-पक्षी या सर्प आदि होते हैं, और (3) वे कहानियां जो मनुष्य पात्रों को लेकर चलती हैं। कुछ कहानियों में देवता पशु और मनुष्य सभी पात्र होते हैं। ये लोक-कथाएं फंतासी और सहज विश्वास के कारण, ग्रामीण लोगों सी प्रकृति में मनुष्य के अबूझ अस्तित्व से संबंधित जिज्ञासा को तुष्ट करती हैं।

यद्यपि इस प्रकार की बहुत सी कहानियां पुरानी पीढ़ी के लोगों को याद हैं, लिखित रूप में या पुस्तक रूप में मिलने वाली कहानियों की संख्या गीतों की अपेक्षा कम है। तेलुगु लोक-कथाओं के जो संग्रह प्रकाश में आये हैं उनके नाम इस प्रकार हैं: आंध्र देशीय कथावली (टी-राजगोपाल राव द्वारा सम्पादित, तीन खंड), कसीमाजिली कथालु (मधिर सुब्बान्न दी क्षितुलु कृत), तेनाली रामलिंगानी कथालु, मर्यादा रामन्नकथालु, तातार्चायलु कथालु, परमानंदय्या कथालु, रेचुक्का पगतिचुक्का कथालु, तेलुगु जातीय मूल कथालु, (मुसनूरि वेंकटशास्त्री कृत), स्त्री ले व्रत कथालु (नेदनूरि गंगा धरन कृत), विनोद कथालु (चिलकमर्ती लक्ष्मीनरसिंहम् तथा टी-कामेश्वर राव कृत), पिट्ट कथालु ("भारती" और "गृहलक्ष्मी" पत्रिकाओं में प्रकाशित)।

इनके अतिरिक्त, कथा सरित्सागर, पंचतंत्र, शुकसप्तसी हंसविंशति आदि प्राचीन कथा-संग्रहों की कहानियां तथा विक्रमादित्य, शालिवाहन, आदि प्रसिद्ध राजाओं की कथाएं, भोज और कालिदास की कहानियां, इस भू-भाग में हुए बड़े राजाओं, मंत्रियों तथा सेनापतियों की कहानियों, शैव और वैष्णव संतों, भक्तों की कहानियां तथा तीर्थ-स्थानों, पर्वतों, मंदिरों और नदियों की कहानियां उस बहुमूल्य विरासत का भाग है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मौखिक परंपरा से मिलती रही है।

यद्यपि इनमें से कई कहानियां दूसरे क्षेत्रों और दूसरी भाषाओं में भी पायी जाती हैं, इनमें तेलुगु क्षेत्र और तेलुगु समाज की स्थानीय विशेषताएं तथा सांस्कृतिक ताना-बाना विद्यमान है। इनमें आंध्र क्षेत्र के लोगों के धार्मिक रस्मों-रिवाज़, विश्वास, खान-पान की आदतें, पहनावा, अंधविश्वास, स्वप्न और कल्पनाओं का चित्रण हुआ है।

7

लोक-संगीत और नृत्य

लोक-संगीत

सुसंस्कृत समाज में गीत और संगीत के बीच अंतर हो सकता है। यहां कवि और संगीतकार के काम भिन्न-भिन्न होते हैं। किंतु सामान्य लोगों के लिए ये दोनों एक हैं और साथ-साथ चलते हैं। अतः अन्य प्रांतों के लोक-संगीत की तरह तेलुगु के लोक-संगीत का प्रारंभ भी अज्ञात है। उसके उद्‌गम का कोई विश्वसनीयअभिलेख नहीं मिलता। हाला की **गाथा सप्तशती** में लिखा है कि फसल से लदे खेतों को देख कर किसान खुशी से गाने लगता है। चालुक्य सोमेश्वर तृतीय ने अपने ग्रंथ **अभिलषितार्थ चिंतामणि** में लिखा है कि 'शतपदी' छंद का उपयोग कहानी सुनाने के लिए किया जाता था।

हर्ष की अभिव्यक्ति और कथा का सहायक, लोक-संगीत के ये दो रूप, निश्चय ही लोक-संगीत के छोर हैं। पहले रूप में प्राकृतिक संगीत सरगम के सुखद, मधुर स्वरों स रि ग म प ध नि स जिसका पश्चिमी रूप दो, रे मे फा...है का प्रयोग किया जाता है और समय बद्धता को छोड़ दिया जाता है, जबकि दूसरा रूप कहानी को एक मधुर ताल देने की गौण भूमिका निभाता है। समयबद्धता दूसरे रूप में बहुत जरूरी रही होगी क्योंकि उसे विरल संगीत की कमी को पूरा करना पड़ता था। लोक-संगीत इन दो छोरों के बीच फैला हुआ है। पहले रूप में शब्द-क्रीड़ा के लिए बहुत गुंजाइश है और उसमें प्राथमिक श्रेणी की प्रारंभिक लय भी होती है। दूसरे में ध्रुव,[1] पल्लवी[2] और चरण[3] को लाया जाता है जिसमें स्वर-छंदों की निर्धारित बानगी को दुहराया जाता है जिससे एक निश्चित लय-रचना का जन्म होता है।

लोक संगीत को मोटे तौर पर निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है :

(1) एकल संगीत, जिसे खेत में बालियां चुनने वाला किसान, पौधों को पानी देता

1- सात स्वरों की संगीत ताल, 2- गीत का मुखड़ा, 3- गीत का अंतिम भाग

हुआ या घर लौटता हुआ भूसे की गाड़ी पर लेटा मजदूर, या झील में छपछप करती भैंस की पीठ पर बैठा ग्वाला गाता है।

(2) काम के बाद घर को लौटते हुए या घर से काम को जाते हुए लोगों के समूह के लिए गाने वाला लड़का या लड़की। इस में गीत के साथ समूह की विभिन्न आवाजों का समवेत संगीत चलता है।

(3) एक व्यक्ति गाना गाता है जिसे मजदूरों का दल समवेतस्वर में दुहराता है।

(4) काम के बीच फुर्सत के क्षणों में सुस्ताने वाले या सोने से पहले श्रोताओं के समूह को कोई कथा-गीत सुनाने वाला।

यह सब घर से बाहर का संगीत है।

घर के अंदर के संगीत को भी इसी प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :—

(1) मां गीत के साथ सुबह दही बिलोने आदि से दिनचर्या शुरू करती है।

(2) पूजा के बाद मंगल आरती गाती हुई गृहिणी।

(3) घरवालों के काम पर चले जाने के बाद युवती विवाह आदि से संबंधित कथा-गीत गाती है।

(4) खेल-खेलती हुई लड़कियों का गीत।

संगीत, स्वर माला के अभीष्ट क्रम-परिवर्तन से बनता है। आरोह (या अवरोह) में पांच या पांच से अधिक स्वरों के योग से राग का एक भाग बनता है। राग का विकास संभवतः संगत वाद्य के आविष्कार के बाद हुआ है। रट कर याद किये जाने वाले गायन-संगीत में स्वर प्रतीकों की बहुत आवश्यकता नहीं होती, यद्यपि संगीत के विद्यार्थी आजकल अनुस्वरों की गायन-त्रुटियों को ठीक करने के लिए इन का (धातुओं का) प्रयोग करते हैं। लोक-संगीत अपने स्वरों और अपनी लय के कारण संगीत बनता है। गांव का संगीतज्ञ (यदि हम उसका अस्तित्व मान लें) विरले ही अपने व्यक्तिगत आवेगों को स्वर-लय के माध्यम से प्रस्तुत करता है। उत्तम लोक-संगीत अभिव्यक्ति-प्रधान होता है और वह श्रोताओं को मधुर स्वर-प्रवाह द्वारा आकृष्ट करता है। कला उसका लक्ष्य नहीं होता है।

अतः हम लोक-संगीत में खिचे हुए स्वर, उनके विभिन्न मिश्रणों की अस्तव्यस्त ध्वनियां और कहानी में वेग लाने के लिए द्रुत गति से अक्षरोच्चारण सुनते हैं। राग अपने शास्त्रीय रूप में लोक-संगीत में शायद ही आता है। इसका कुछ अंश हमें सपेरे की बीन में मिल सकता है। कभी-कभार किसी संगीतकार को हम लंबे स्वर (म या प) बजाते सुन सकते हैं। जैसे मंद्र स्वरों के कपूर से उठने वाला सुगंधि धूम। रायल-सीमा के पानी खींचने वाले का गीत इसका उदाहरण है। भूसे की गाड़ी में आराम से लेटा हुआ किसान या भैंस की पीठ पर सवारी करता हुआ बालक एकल स्वरों का उपयोग

करता है । मुझे लगता है कि यह संगीत प्रबंधों में वर्णित "अचिका" है यद्यपि संगीतकार स्वर की दूसरी मात्रा के साथ आने वाले स्वर का नाम लेता है । अंत्य स्वर अनेक प्रकार के लोक-संगीत में सुनाई देता है ।

लोरी के अंत में दो स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई देते हैं। ये है रि और स । रि स्वर निंदियाए मन को काल्पनिक ऊंचाई तक ले जाता है और स उसे नीचे ले आता है । अक्सर दो स्वरों के साथ पंक्ति के अंत में "जो" "जो" की अभिव्यक्ति होती है मजेदार बात यह है कि हाला की मूल प्राकृत गाथाओं में पंक्ति के अंत में दो स्वरों के प्रयोग को संभवत: जारी रखा गया इसी से इस मनोहारी जोड़े को नाम मिला । संगीत-शास्त्र की" गाथिका यही होगी । तीन स्वर गृहिणी द्वारा प्रातः दही बिलोते समय गाये जाने वाले गीत में सुने जा सकते हैं । उनके अंत में "ओह, उठो,, (मेलुको) तीव्रतर होता हुआ सुनाई पड़ता है जो सोये हुए व्यक्ति के कानों में बार-बार गूंजकर उसे जगाता है । यह संगीत शास्त्र की 'सामिका' है। वेद भी नि, स, रि के तीन स्वरों में रचे गये हैं। यह स्वर लय सम्मिलन सभी प्रदेशों के लोक-संगीत में विद्यमान हैं ।

स्वरांतरा चार स्वरों का समूह है । हम इसे विशेष रूप से स्त्रियों के गीतों की छद्म अनुपल्लवी[1] में सुन सकते हैं । गायक के लिए मध्य स्थायी में गाना बड़ा सुविधाजनक होता है । किंतु तार-स्थायी का अपना ही आकर्षण होता है। एक महिला गायक जब तार स्थायी में गाने लगती है तो सामान्यतया स्वरांतरा दिखाई देता है। मंगलम् या आरती आदि भक्तिगीत में स्वरांतरा का हमेशा प्रयोग किया जाता है। ग्रामीण लोगो के प्रेम-गीतों से प्रकट होता है कि कभी-कभी गायक राग के क्षेत्र को छूता था किंतु यह सामान्य नियम नहीं था। स्वरों को मनमोहक ढंग से प्रस्तुत करना आंध्र के लोक-सगीत की मुख्य विशेषता है । जनपद अर्थात् ग्रामीण गायक को कौशल के प्रदर्शन की चिंता नहीं होती । वह दूसरों के लिए अपनी कला का प्रदर्शन करता है और उसके संगीत-स्वर अपने मूल अर्थ (स्वर तो रंजयति इति स्वर:) की सम्पूर्ण शक्ति के साथ आता है ।

संगीत कहानी के मूल भाव, अर्थात् रस का अनुपान है । अत: गीत शतपदी छंद में हो या खंड-गति में, रचना की विभिन्न पंक्तियां समान स्वर-क्रम में प्रस्तुत की जाती हैं। जब इन्हें मिलाया जाता है तो निश्चय ही स्वरांतरा की उत्पत्ती होती है और नि, स, रि, म और प स्वरमाला के रूप में प्रकट होते हैं । लोग उसी स्वरक्रम को बार-बार दुहराने में नहीं उकताते । उनका लक्ष्य होता है काम में कुछ आनंद की सृष्टि करना काम की उकताहट को भूलना और कहानी ग्राह्य बनाना । इन पुनरावृत्तियों में तंत्रियां इतनी स्पंदित हो जाती हैं कि असाधारणा शारीरिक श्रम की थकान मिट जाती है ।

1, गीत की बीच की पंक्तियां

हम देखते हैं कि गाने वाला काम करते हुए एक पंक्ति गाता है और फिर काम पर लग जाता है।

विभिन्न ध्वनियों का सामंजस्य जो शास्त्रीय संगीत में अभी तक अपरिचित है, लोक संगीत में श्रमिकों, लड़कियों या स्त्रियों की टोली द्वारा मिल कर किसी पंक्ति को दुहराने में दिखाई देता है। किंतु विभिन्न मूल षड्ज स्वरों की आवाजों का कोई प्रयोग नहीं किया जाता है। केवल स्वर-संगीत और स्वर-परिणाम को अधिक समृद्ध बनाने के लिए आवाजों को मिलाया जाता है विजातीय स्वरों के साथ वैज्ञानिक प्रयोग नही किया जाता। लोक-संगीत विजातीय स्वरों के प्रति सहिष्णु होता है किंतु वह न तो उन से प्रेम करता है और न उन्हें सामास ग्रहण करता है।

लय, समूह-संगीत में चरम यथार्थता प्राप्त करती है। कई गायक गोल-दायरे में इकट्ठे होकर गाते हैं और कहानी सुनाने वाले के लिए एक सुखद पृष्ठभूमि उपलब्ध कराते हैं। वह कहानी सुनाता है, एकल अभिनय करता है और रावण की तरह चेहरा बना एक गोल दायरे में खड़े अपने साथी को झाड़-फटकार सुनाता है। वह सीता, हनुमान, विभीषण और रावण का अभिनय पूरी निष्पक्षता से करता है। समूह खड़-तालें बजाता हुआ आगे-पीछे कदम रखता है जिससे गोलदायरा छोटा-बड़ा होता रहता है और जब कहानी सरल-सीधी चल रही होती है, तो गीत के मुखड़े को दुहराता जाता है। अत्यंत उत्तेजना के क्षणों में वे कहानी के टुकड़े को दुहराकर आवाज ऊंची करते हैं। कहानी चरम सीमा को लक्ष्य करके आगे बढ़ती है। समय की ताल सादी किंतु बिल्कुल सही होती है। अक्सर एकताल" और कभी-कभी सात मात्राओं के "त्रिपुट" का उपयोग किया जाता है और इस सम्मिलित ताल के साथ-साथ संगीत उन हजारों दर्शकों को रिझाता रहता है जो रात-रात भर मजे से संगीत सुनते रहते हैं।

संगीत के साथ कभी-कभी ढोलक, डफ आदि वाद्य भी रहते हैं किंतु ये सरल लय बजाते हैं न कि संगीत सभाओं के मंच पर बजाई जाने वाली पेचीदा गतें। आमतौर पर तीन, चार या पांच वर्णों की एक ताल भी बजाई जाती है। ताल को कसने के लिए प्रारंभ का ताल परिवर्तन जिसे तेलुगु में "जाग" कहते हैं, यहां नहीं दिखायी देता। स्वर की तरह ताल का संयोजन भी श्रोताओं के साथ तादात्म्य पैदा करने के लिये किया जाता है। कहानी ही सब कुछ होती है। कहानी या साहित्य के बिना संगीत नहीं होता जो इस बात का प्रमाण है कि साधारण लोग बौद्धिक व्यायामों में रुचि नहीं लेते। वे लय और ताल का आनंद तो लेते हैं किंतु वाद्य-यंत्रों पर किसी व्यक्ति द्वारा प्रतिभा प्रदर्शन में उनकी रुचि नहीं होती।

लोक-संगीत और शास्त्रीय-संगीत में मूल भेद बाहरी रूप का नहीं आत्मा का है! लोक संगीत सीधे-सादे ग्रामीण व्यक्ति के हृदय की उपज है किंतु शास्त्रीय-संगीत चिंतन-

शील मन और सुशिक्षित संगीतकार का उत्पाद होता है। यहां यह बात कही जा सकती है कि शास्त्रीय संगीत भी प्रकृति के सभी रूपों, धर्म, प्रेम आदि के उस वातावरण से उत्पन्न होता है जो ग्रामीण समाज की नैतिक भावनाओं के लिए अनिवार्य है। प्राकृतिक सरलता और मानव-हृदय का आलोक जो ग्रामीण समाज में काफी स्पष्ट होता है, लोक संगीत के रूप और शैली का महत्वपूर्ण पक्ष है। आइये, हम पहले लोक-संगीत की शैली पर विचार करें। लोक-संगीत को प्रभावकारी बनाने वाले तत्व हैं आवाज़ की शक्ति, विशिष्ट माधुर्य और समवेतस्वर। गीत से पहले या बाद में स्वरालाप होता है। यह स्वरालाप भी लोक-गीत को विशिष्टता प्रदान करता है। अक्षरस्वर गौण होते हैं। जब लोक-गीत गाया जाता है तो एकतारे या तंबूरे आदि का प्रयोग श्रुति बनाए रखने के लिए किया जाता है और ये सारे स्वर उसी 'आधार षड्जम' के होते हैं। जब दो, तीन या अधिक व्यक्ति मिल कर गाने लगते हैं तो उनके लिए विभिन्न श्रुतियां आवश्यक नहीं होतीं, 'आधार षड्जम' सबके लिए एक ही होता है। कभी-कभी जब गायक दम्पति भीख मांगने के लिए निकलते हैं तो पति "मध्यस्थायी" में और पत्नी तारस्थायी में गाती है। यहां भी दोनों में भेद स्थायी का होता है न कि श्रुति का।

जब कोई व्यक्ति एकांत में, या आत्मदर्शन की मनःस्थिति में लोक गीत गाता है तो उसके स्वर तीव्र गति से प्रवाहित होते हैं। गाथा गाते समय प्रारंभ या अंत को छोड़ कर अन्य स्थलों पर स्वरों के प्रदर्शन की अधिक गुंजाइश नहीं होती। अंतिम पंक्ति या चरण में स्वर को नहीं लाया जा सकता। गाथा गाते समय हमें एक ही स्वर विशेष कर अंत्य स्वर में सुनायी देता है। ऐसा लगता है कि संगीतकारों ने एक, दो, तीन और चार स्वरों, अर्चिका, गाधिका, सामिका और स्वरांतरा से गीत की रचना की है जबकि आरोह और चार से अधिक अर्थात् पांच, छ: और सात स्वरों से अवरोह के साथ राग की रचना होती है। संगीतकारों ने प्रथम चार स्वर, अर्चिका, गाधिका, सामिका और स्वरांतरा को देसी-संगीत या लोक-संगीत से लिया होगा। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि किसी भी संगीत-प्रबंध में हमें स्वरों के उदाहरण नहीं मिलते, केवल रागों के उदाहरण मिलते हैं। स्वरों के उदाहरण हमें लोक-संगीत में ही मिल सकते हैं। यद्यपि संगीत के विद्वानों ने संगीत को 'देसी' और 'मार्ग' इन दो वर्गों में विभाजित किया है किंतु देसी संगीत की न तो उन्होंने व्याख्या की है और न उदाहरण दिया है। 'सामवेद' लोक-संगीत की अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें तीन स्वरों अर्थात् अर्चिका, गाधिका और सामिका का विश्लेषण दिया गया है।

लोक-संगीत को रागों से जोड़ने की कोशिश व्यर्थ होगी। ऐसा करके हम इतना तो जान सकते हैं कि अमुक राग क्षेत्र या जाति में लोकप्रिय है। किंतु लोक गीतों में 'काकली', 'कैशिकी', 'अंतरा' और 'साधारण' में अंतर कर पाना बहुत कठिन है।

इसके अतिरिक्त लोक-गीत में आह···हा···ओह···हो··· आदि विस्मयाभिव्यक्तियों या स्वराभिव्यक्तियों का बाहुल्य रहता है जिनका स्वरों से कोई संबंध नहीं होता। तथापि यह कहा जा सकता है कि परंपरा के अनुसार प्रातःकाल के जागरण गीत 'भूपाला' और 'बौली' में लोरियां या दुलार-गीत 'नवरोज' में, 'जाजर' या 'चर्चरि' गीत 'हिंडोला' या 'बसंत' राग में गाये जाते हैं। दक्षिण भारत के अन्नामाचार्य (1424-1503) जैसे प्रारंभिक संगीतकारों ने लोक-संगीत से बहुत कुछ लिया है और बहुत से गीत लोक-शैली में, कुछ परिवर्तनों के साथ, बनाये हैं। उदाहरण के लिए दुलार-गीत, जिन्हें तेलुगु में 'लालीपाटलु' कहा जाता है, नवरोजु राग में गाया जाता है :

रामलाली, मेहश्याम लाली
तमरस नयना, दशरथतनया लाली

यद्यपि 'नवरोजु' के स्वर इन पंक्तियों में काफी स्पष्ट हैं, लाली के अंतिम दो स्वर रि और स ही शिशु को नींद की गोद में ले जाते हैं।

इसी रीति से स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले विवाह-गीतों जैसे 'सीता मुद्रिकालु' और 'राघव कल्याणम्' को परखा और वर्गीकृत किया जा सकता है। इन गीतों की वैचारिक जटिलताओं की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए। इनमें मुख्य बात है गाने वाले की मीठी आवाज। कोयल की तरह गीत गाने वाली लड़की का यह प्राकृतिक गुण ही हमें गाने की तरफ खींचता है।

अब हम लोक-संगीत के स्वरूप पर विचार करेंगे। इस संगीत में गायक की मानसिकता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह बात कई तरह से स्पष्ट होती है।

लोक-गीत कई प्रकार के होते हैं। इन्हें तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है : (1) बच्चों, स्त्रियों, श्रमिकों आदि पर अपने प्रभाव के आधार पर, (2) गीत के विषय के अनुसार, जैसे पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक आदि, और (3) रस या भाव के अनुसार, जैसे शृंगार, अद्भुत, करुण, हास्य आदि। प्रमुख वर्ग को उपवर्गों में भी बांटा जा सकता है। इन वर्गों या उपवर्गों में प्रत्येक का अपना संगीत रूप होता है। सामान्यतया संगीत-रूप का निर्धारण वह व्यक्ति करता है जो गीत का विषय तैयार करता है।

प्राचीन लक्षणकारों और आधुनिक विद्वानों ने इन गीतों का अध्ययन करके इनकी काव्य विशेषताएं निर्धारित करने का असफल प्रयास किया है।

पुव्वु पेरे जाजि पुव्वु
पुरमु पेरे अयोध्यापुरमु
देवी पेरे, सीता देवी ।[1]

इस तरह के गीत तमिल के 'कुरै मोनै' गीत से मिलते-जुलते हैं तथा 'ओरू उमोनोई' तथा निम्नलिखित गीत :

गुडुगुडु गंचम, गुंडे रागम्
पमुला पट्टम्, पडगा रागम्···आदि[2]

तमिल के 'कुरै मोनै' के समान होता है, और

लाली शंकर सदा ललित कुमार-लालीपाटु
ताण्डवोल्लास गणधीर
वडुनगुडाडम्मा वीनवम्मा-एरीक पालु सुम्मा, आदि ।[3]

तमिल के 'तोडई' छंद जैसा है ।

सुव्वि, सुव्वि रामचंद्र, सुव्वि सुव्वि कीर्ति संद्र
सुव्वि सीतम्मा याकु शुभमूलिम्मा ।[4]

धान आदि कूटते समय गाये वाले उपर्युक्त गीत की 'तुर्ग वाल्गन राग' से तुलना की जा सकती है । इसी तरह :—

गुम्मादेदे गोपीदेवी, गुम्मादेदे अम्मा तल्लि
गुम्मोन्नि चुपाडिवम्मा अम्मा मायम्मा ।[5]

इस गीत की कन्नड़ के "भामिनी शतपद" से तुलना की जा सकती है ।

1- फूल का नाम चमेली है, नगर का नाम अयोध्या है और देवी का नाम सीता है ।
2- बच्चों का एक बेतुका पद (नान्सेंस राईम) जिसका कोई विशेष अर्थ नहीं होता ।
3- चुप चुप मेरे लाल, सुन न मत कर यह गाय का दूध है, बहुत अच्छा ।
4- ओह भगवान रामचंद्र, प्रसिद्ध राजा, ओह मां सीता,··· हमें शुभाशीष दो ।
5- ओ मां यशोदा, बालक कृष्ण कहां है ? कहां है वह ?

हरि हरि नारायणादिनारायण
करुणिचि मामेलु, कमल लोचनुड[1]

इस प्रकार की सभी गाथाएं 'द्विरदगतिराग' के बहुत करीब हैं ।

निकु नाकु दुरमये, निलिकोंडलाडुमये
चंद्रगिरि चिरेलम्पार ओरंडाकड बंगरूमामा
चंद्रगिरि चिरेलम्पार[2]

इस प्रकार के एला गीत 'भोगशतपद' के निकट हैं ।

तेलुगु छंद 'मधुरगति रागडा', 'चतुष्पद', 'शतपद', 'द्विरद्गीत रागडा', 'हय प्रचार रागडा' वृषभगति रागडा', कन्नड छंद 'मंदानिल' 'चंदोवतमास', 'कुसुम शतपद', 'ललित', 'भोग शतपद', 'भामिनी शतपद' से क्रमशः मिलते हैं ।

तमिल, तेलुगु और कन्नड़ लक्षणकारों द्वारा प्रतिपादित ये छंदगत समानताएं उस सीमा से आगे नहीं जाती । इससे संभवतया हमें यह प्रमाणित करने में सहायता मिलती है कि इन लक्षणकारों ने लोक-संगीत से कुछ रूपों को लेकर इन छंदों का संबंध देसी छंदों से स्थापित किया है । उनके संगीत-छंदों के विभिन्न रूपों का पता लगाने का सबसे सरल तरीका यह है कि हम उनके उद्गम की खोज करें । संगीत, नृत्य, कविता आदि का उद्गम इस आदिम-मानव में खोजा जा सकता है जो हर्षातिरेक की स्थिति में अपनी भावनाओं को गीत या नृत्य में व्यक्त करता था । आदिम मानव उन बारीकियों में नहीं जा सकता था जो हमने आज संगीत को दी है । हर्षातिरेक की स्थिति में अधिक से अधिक उसका हृदय कुछ सीधे-सरल ढंग से धड़क सकता था और यही लोक-संगीत, लोक कविता और लोक नृत्य के रूपों का रहस्य है ।

यह कथन कि "लोक-संगीत 3, 4, 5, 6, 7, और 8 'आवृत्त' की तालों पर चलता है" लाखों गीतों में निहित लोक-संगीत के सिद्धांत को समझने के लिए काफी है । तकनीकी भाषा में यदि कहें तो 'त्रिसर', 'चतुर्सर', 'मिश्र' और 'खंडगति' लयों में लोक-संगीत के समस्त रूपों को रखा जा सकता है । यहीं पर गायक का मनोविज्ञान आता है जो लोक-संगीत की ताल, लय, चरण की लंबाई, शब्दों का चयन, यति और अन्य बारीकियों का निर्धारण करता है ।

1- हे सर्वशक्तिमान, हम सब पर कृपा करो, हम सब का भला करो ।
2- ओ प्यारे मामा, मेरे और तुम्हारे बीच एक दीवार है । नीचे पर्वतों ने हमें अलग कर लिया है ।

बुर्रा कथा





बाघ नृत्य



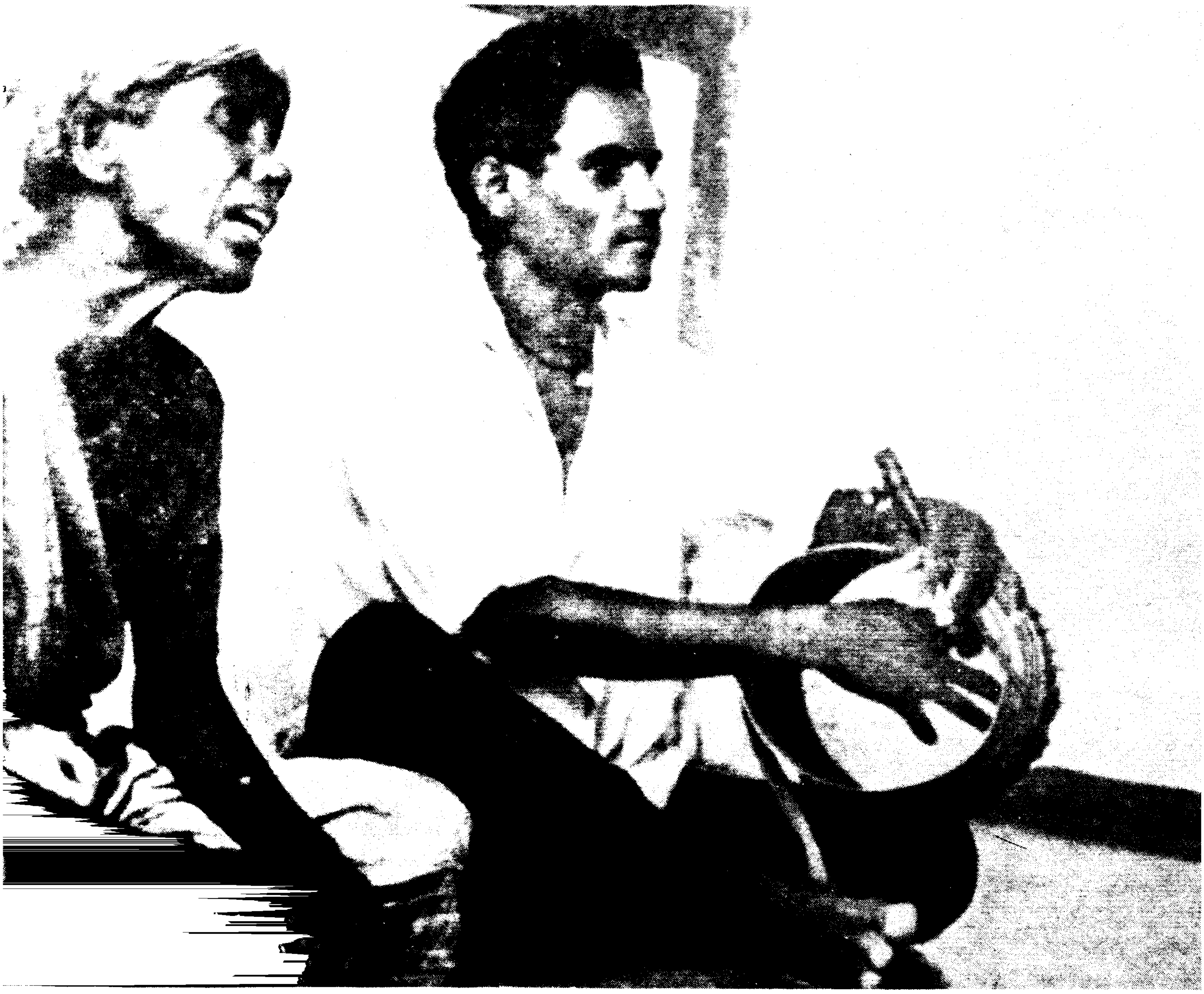
दुदाला नारायण
दोहरा मृदंग बजाते हुए



यक्षगान में रंभा



जमुकुल
कथा






1
2
3
2
5
6
7



कुचुपुड़ी नृत्य

क्षेत्रीय नृत्य के स्वरूप

लोक-नृत्य आदिम-नृत्यों के अधिक निकट हैं। शास्त्रीय नृत्य सुशिक्षित व्यक्तियों तथा सुसंस्कृत नृत्य गुरु द्वारा रचे जाते हैं और शास्त्रों में बद्ध किये जाते हैं। भरत मुनि 'नाट्य शास्त्र' में जो भारतीय रंगमंच का वृहत् ग्रंथ है, क्षेत्रीय नृत्य शैलियों का उल्लेख किया गया है। भरत कलाकार दलों से कहते हैं कि वे क्षेत्र-विशेष के दर्शकों के आगे केवल उन्हीं शैलियों में प्रदर्शन करें जिनसे दर्शक परिचित हों। इससे सिद्ध होता है कि लोक-नृत्य परंपरागत ही नहीं, प्राचीन भी हैं।

श्री फाबियान बाऊर्स अपनी पुस्तक 'डांस इन इंडिया' में कहते हैं : '''''गांवों और ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वत्र सामाजिक और आदिम, ये दो प्रकार के लोक-नृत्य मिलते हैं। सामाजिक-नृत्य उत्सव-नृत्य होते हैं जो आज भी गलियों और घरों में विशेष अवसरों पर किये जाते हैं। आदिम प्रकार के लोक-नृत्य सामान्यतया धार्मिक अनुष्ठानों के नृत्य हैं जो अब अधिकांशतः आदिवासियों, पर्वतों में रहने वाली जन-जातियों, जिप्सियों और भारत के भीतरी तथा दूरस्थ क्षेत्रों के दलित वर्गों तक सीमित हैं। ये सभी मिल कर वास्तविक नृत्य बनते हैं।'' (पृष्ठ 6)

लोक-नृत्य देखते समय हमें कौन-सी विशेषताएं आकृष्ट करती हैं? स्वाभाविकता, सहजता और सरल अंग-संचालन। अंग-संचालन में स्वतन्त्र और निर्बाध विचार-प्रवाह का स्पष्ट प्रभाव होता है। सुख-दुख के बीच की सभी अनुभूतियां उसमें व्यक्त होती हैं। यद्यपि इसमें कुछ प्रयास दिखाई देता है किंतु सहज-स्वाभाविक तत्त्व उस पर हावी होता है। दर्शक को यह कला का एक रूप लगता है किंतु नर्तक के लिए यह श्रद्धाभाव से किया गया अनुष्ठान होता है। पेशेवर नर्तक और गायक बनने में उन्हें समय लगा। वर्तमान लोक-नर्तक और गायक आदिम-नृत्यकला के साधक रहे हैं। यह बात सारे भारत में समान रूप से लागू होती है।

आंध्र में इन नृत्य रूपों का संश्लिष्ट रूप देखा जा सकता है। ये नृत्य अनेक बातों में भिन्न-भिन्न होते हैं। आदिम-नृत्य विकासात्मक और व्युत्पन्न लगते हैं। किस प्रकार से यह कला आदिम युग से लेकर आधुनिक ग्रामीण अवस्था तक विकसित हुई, यह प्रश्न अब भी ज्यों का त्यों बना हुआ है।

जैसा कि हमने प्रारंभ में कहा है, आंध्र प्रदेश में वनों में रहने वाली, पर्वतों में रहने वाली और आदिवासियों की लगभग तेंतीस जातियां हैं। इनके नृत्यों को मोटे तौर पर तीन वर्गों में रखा जा सकता है : (1) धार्मिक-नृत्य, (2) सामाजिक-नृत्य, और (3) मनोरंजन-नृत्य।

गोंडों का गुसादी नृत्य

दीपावली आदिलाबाद जिले के राजगोंडों का सबसे बड़ा त्योहार है। इस समय फसल कट चुकी होती है, मौसम ठंडा और मनोनुकूल होता है। रंग-बिरंगे वस्त्रों तथा आभूषणों से सुसज्जित गोंड लोग दल बनाकर नाचते और गाते हुए पड़ोसी गांव में जाते हैं। इस प्रकार के दलों को दंदारी कहते हैं। प्रत्येक दल में बीस से चालीस तक सदस्य होते हैं। 'गुदासी' (दंदारी का एक भाग) में दो से पांच तक सदस्य होते हैं। यह त्योहार पूर्णिमा से शुरू होकर दीपावली की अमावस्या तक चौदह दिन चलता है। प्रत्येक सदस्य मोरपंख की पगड़ी, सिर पर हिरन के सींग, नकली दाढ़ी-मूंछ और शरीर पर बकरी की खाल पहनता है। **डप्पु** (बड़ी बिना घंटियों की तंबूरी) **तुडुमु** (एक प्रकार की डफली) **पीपरी** (तुरही), **काली कोम** (एक ताल वाद्य), उसके साथ होते हैं। जब दंदारी-**गुमेला** की चोटों के साथ नियमित पदताल और लय में गोल दायरे में नाचते-नाचते चरम सीमा में पहुंचता है तो गुसादी अचानक आ जाता है।

दंदारी नृत्य धीरे-धीरे बाईं ओर कदम रख कर और बाएं पैर को बाईं ओर झुला कर शुरू होता है। प्रत्येक नर्तक के हाथ में दो छोटे डंडे होते हैं। पहले वह अपने दोनों डंडों को बजाता है फिर दाईं ओर के नर्तक के डडों के साथ, और फिर अपने हाथ में बजाने के बाद बाईं ओर के नर्तक के डंडों के साथ बजाता है। इस प्रकार क्रम से डंडे बजते और कदम रखते हुए वे **कोलाटम** करके वापस अपनी जगह आ जाते हैं। इसके बाद वे नीचे झुके हुए डंडों से जमीन को चारों ओर छूकर चारों ओर एक-एक कदम रखते हैं। यह देवताओं की वंदना में किया जाता है। फिर वे अपने घेरे को ठीक करके अपने डंडों को नीचे रख देते हैं और तालियां बजा कर गाते हैं। गाना दो दलों द्वारा दोगाने के रूप में गाया जाता है। एक दल एक पंक्ति गाता है और दूसरा दल दूसरी पंक्ति।

जब यह चल रहा होता है तो गुसादी दल घेरे में घुस जाता है। सिर पर मोरपंख की पगड़ी, चेहरे पर नकली दाढ़ी-मूंछें, शरीर पर बकरी की खाल, गले में कौड़ियों और मनकों की माला, कलाइयों में घंटियां पहने, शरीर पर सफेद धारियां और बिंदु लगाये, कमर में मामूली सा वस्त्र पहने और हाथ में डंडे लिए हुए होते हैं। दंदारी इधर-उधर बिखर जाते हैं। गुसादी, हाथ उठाकर तथा कौड़ियों और घंटियों की आवाज के साथ, हाथों को झुलाने-झटकने से दर्शकों के लिए भयानक दृश्य उपस्थित करते हैं। वे इधर-उधर उछलते हैं, युद्ध के नारे लगाते हैं और अपने भावावेशपूर्ण नृत्य तथा पागलों की-सी हंसी से बच्चों को डराते हुए दर्शकों के पास आते हैं। चारों ओर घूमते हुए वे अपने डंडों से दर्शकों के शरीर को छू कर उन्हें डराने का अभिनय करते हैं। अपने सांकेतिक अभिनय से वे दर्शकों को रिझाते हैं कुछ समय बाद वे बाजों की ताल पर

आगे-पीछे, इधर-उधर कदम रखते हुए या टेढ़ी-मेढ़ी गति से नृत्य करते हैं। अंत में गांव के लोग उन्हें निमंत्रित करते हैं और उनके चरण धोते हैं।

कोंड रेड्डी लोगों का आम्रनृत्य

पर्वतीय रेड्डी या कोंड रेड्डी, जिन्हें हिल्स बिसन के रेड्डी भी कहा जाता है, खम्मम, ईस्ट गोदावरी और वेस्ट गोदावरी जिलों के निवासी हैं। ये क्षेत्र कोंड रेड्डियों के लोकप्रिय फल, आमों के लिए भी प्रसिद्ध हैं। आम तोड़ने से पहले ये लोग एक उत्सव मनाते हैं और सामूहिक नृत्य करते हैं। वे मुसादियों की तरह अपने शरीर को रंग आदि से चित्रित नहीं करते हैं। कोंड देवी मुत्यालम्मा की पूजा के रूप में वे ताल-वाद्यों के साथ नृत्य करते हैं। नृत्य रात के समय धीमी ताल से शुरू होता है।

तीन या चार स्त्रियां, हाथ में हाथ डाल कर ड्राईनट की खड़ताल जैसी आवाजों के साथ नाचने लगती हैं। फिर स्त्री-पुरुष नृत्य में शामिल हो जाते हैं लेकिन दोनों की टोलियां अलग-अलग रहती हैं। बाईं ओर झुक कर वे स्थान का चक्कर लगाती हैं। एक खास ढंग से पैर द्वारा जमीन पर थाप देती हुई चार कदम आगे जाती हैं। दाएं पैर से चार बार थाप देकर वे एक ओर झुकी हुई आगे आती हैं और फिर एक कदम उसी तरह पीछे आती हैं। एक घेरे में स्त्री-पुरुष तालमय गति के साथ केंद्र की तरफ आते हैं फिर उसी धुन के साथ बाजू हिलाते पीछे आते हैं। इससे नृत्य का मनोहारी दृश्य उपस्थित होता है। पांव दूर रख कर एक पैर आगे रखते हुए दाएं-बाएं पैर पर क्रमशः उछलना नृत्य की एक और विशेषता है। पुरुष के पदाघात स्त्रियों के पदाघातों से भिन्न होते हैं। पुरुष आगे बढ़ते समय दाएं पैर को आगे रखते हैं फिर दाएं को बाएं की एड़ी पर लाते हैं। इससे दाएं पैर को पुनः आगे रखने में सुविधा हो जाती है। बाजे बजाने वाले शुरू में बीच में खड़े होते हैं, बाद में वे नर्तकों के साथ मिल कर आगे-पीछे पैर रखते हुए नाचने लगते हैं। दो प्रकार के ढोल पद गति को नियमित ताल देते हैं। जब ढोल की आवाज तेज हो जाती है तो नृत्य की गति भी तीव्र हो जाती है।

लगभग आधी रात को प्रीति भोज के बाद स्त्री-पुरुष और बच्चे फिर नृत्य करने लगते हैं। वे मुत्यालम्बा और अन्य पहाड़ी देवी-देवताओं की पूजा के गीत भी गाते हैं। इन गीतों का धार्मिक महत्त्व होता है। जब अनुष्ठानिक नृत्य चरम-सीमा में पहुंचता है तो गीत भी समाप्त हो जाता है। टोलियां टूटती हैं और स्त्री-पुरुष फिर घेरे में नृत्य करते हैं और हर्षोन्माद में नयी टोलियां बनाते जाते हैं। इसके बाद वक्रोक्तिपूर्ण द्विपद गाये जाते हैं। यह क्रम अगली सुबह तक चलता रहता है और तभी समाप्त होता है जब सभी थक जाते हैं।

खोंड लोगों का मोर नृत्य

खोंड जिन्हें सामंत भी कहा जाता है, विशाखापट्टनम और श्रीकाकुलम् जिलों के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले सबसे अधिक पिछड़े हुए पहाड़ी लोग हैं। इन क्षेत्रों के पेड़-पौधे और वन्य जीव बहुत सुंदर हैं। इस क्षेत्र के सुंदर पक्षियों में मोर सबसे लुभावना होता है। विवाह तथा अन्य उत्सवों पर, जो अक्सर अप्रैल मास में पड़ते हैं, खोंड मयूर-नृत्य करते हैं। **पिरोडी** (एक प्रकार की बांसुरी) और पैरों, में बंधी छोटी-छोटी घंटियां ही वाद्य-यंत्र होते हैं। सभी नर्तक सफेद धोतियां पहनते हैं, पैरों में कड़े पहनते हैं, जिन्हें मुय्यंगम् कहा जाता है, स्थानीय घास की बनी हुई पगड़ी (तोयंगम्) पहनते हैं जिस पर कपड़े की रंग-बिरंगी कतरने लगी होती हैं और कमर के पीछे मोरपंख के गुच्छे बांधते हैं जो आगे झुकते समय मोर की पूंछ जैसे लगते हैं।

सभी नर्तक प्रारंभ में दो पंक्तियों में खड़े हो कर मोर की आवाज की नकल करते हैं। घेरा बना कर वे घुटनों से आगे झुकते हैं जिससे वे नाचते मोर के समान दीखते हैं। धरती माता और सूर्य भगवान की वंदना करने के बाद वे नृत्य शुरू करते हैं। अपनी हथेलियों को मुंह पर रख कर वे मोर की आवाज की नकल करते हैं और दाईं टांग पर खड़े होकर बाईं को लय के साथ घुमाते हैं; उधर कड़ों की घंटियों से मधुर संगीत उत्पन्न होता है। पिरोडी के मधुर स्वरों के साथ-साथ वे आगे-पीछे चलते हैं। उनका बैठना, घेरे में घूमना, कदम रखना, झुकना और दाएं हाथ से रूमाल हिलाना ऐसा दृश्य उपस्थित करता है कि लगता है दर्जनों मोर खुशी से घेरा बना कर नाच रहे हों। इसमें शादी से पहले, दुल्हिन के घर जाते हुए दुल्हे का अभिनय भी किया जाता है।

अर्कू घाटी का दिन्स नृत्य

अर्कू घाटी विशाखापट्टनम् जिले का अत्यंत सुंदर क्षेत्र है। इस घाटी तथा अन्य एजेंसी क्षेत्र में वाल्मीकि, बगट, खोंड और कोटिया कबीले निवास करते हैं। इन कबीलों का प्रिय नृत्य दिन्स नृत्य है जो बच्चों-बूढ़ों और स्त्री-पुरुषों द्वारा चैत्र (मार्च-अप्रैल) मास में विवाहों तथा अन्य उत्सवों पर किया जाता है। त्योहारों पर नृत्य में हिस्सा लेने के लिए लोग एक गांव से दूसरे गांव में जाते हैं और प्रीति भोज आदि से उनका सम्मान किया जाता है। इन उत्सवों और नृत्यों में भाग लेने वाले लोगों को **संकिडि केलबार** कहा जाता है। दिन्स नृत्य न केवल नर्तकों और दर्शकों का मनोरंजन करता है अपितु विभिन्न गांवों के लोगों के बीच मैत्री और भाईचारा भी स्थापित करता है। इस नृत्य के साथ बजाए जाने वाले वाद्य हैं, **मोरी किरिडी, तुडुमु, डुप्पु, जोडुकोम्मुलु** (दो सींग) दिन्स नृत्य की आठ किस्में हैं :

(1) **बोडा दिन्स** : ग्राम देवी के सम्मान में किया जाने वाला पूजा नृत्य है। दाईं ओर पुरुषों की और बाईं ओर स्त्रियों की दो पंक्तियां बनती हैं। ये पीठ के ऊपर हाथ डाल कर एक दूसरे को पकड़े रहते हैं। दाईं पंक्ति का पहला व्यक्ति हाथ में मोरपंख का गुच्छा लेकर नायक के रूप में लयात्मक गति से कुछ कदम चलता है और दाईं पंक्ति का अंतिम व्यक्ति उससे आ मिलता है। इसके बाद सभी नर्तक नूपुरों की लय के साथ टेढ़े-मेढ़े नाचते हुए घेरे में करते हैं हर्ष में "हरि", "हुइ" चिल्लाते हुए नाचते जाते हैं और फिर वापस अपनी-अपनी पंक्तियों में आ जाते हैं।

(2) **गुंदेरि दिन्स या उसकु दिन्स** : नर्तक दल का एक पुरुष सदस्य गाकर महिलाओं को साथ नाचने के लिए आमंत्रित करता है। स्त्री-पुरुष मिल कर, स्थिर कदम आगे-पीछे रख कर घेरे में नृत्य करते हैं। यह शक्ति और उत्तेजनापूर्ण नृत्य है।

(3) **गोड्डिबेटा दिन्स** : आदिवासी नर्तक दल सिरों को नीचे झुका कर ऊपर उठाते हुए नाचते हैं जैसे वे पत्थर उठा रहे हों। झूल कर आगे झुकते, फिर उठते हुए वे पच्चीस कदम जाते हैं और फिर उसी तरह पीछे आते हैं। यह क्रिया चार-पांच बार दुहराई जाती है।

(4) **पोतर-टोला दिन्स** : यह नृत्य पत्ते बीनने का प्रतीक है। आधे नर्तक एक पंक्ति में साथसाथ खड़े होते हैं। दूसरे उसी प्रकार पंक्ति के पीछे खड़े होकर अपने हाथ आगे वाले व्यक्तियों के कंधों पर रखते हैं। अब दोनों पंक्तियों के नर्तक अपने सिर दाएं-बाएं मोड़ते हुए आगे-पीछे चलते हैं।

(5) **भाग दिन्स** : यह नृत्य बताता है कि शेर के हमले से कैसे बचाव किया जाता है। नर्तकों का आधा दल एक दूसरे के हाथ पकड़ कर घेरा बना लेता है। वे अपने पंजों पर खड़े होकर सिर को झुकाते-उठाते हैं। दूसरा दल तेजी से चल कर घेरे में घुसता है और "सर्पकुंडली" बनाता है। इसे कई बार दुहराया जाता है।

(6) **नाटीकरी दिन्स** : यह एकल नृत्य है जो वाल्मीकि आदिवासियों द्वारा विशेष दीपावली के दिन और अन्य आदिवासियों द्वारा दूसरे त्योहारों पर किया जाता है।

(7) **कुंड दिन्स** : इस नृत्य में नर्तक लय के साथ झूलते हुए एक दूसरे को कंधों से धकेलते हैं।

(8) **बय दिन्स** : आदिवासी चेला (गणचारी) यह नृत्य उस समय करता है जब ग्राम देवी की आत्मा उसमें प्रवेश करती है। सभी ग्रामवासी उसके चारों ओर जमा हो जाते हैं और सिर झुका कर उसका अनुकरण करने लगते हैं। यह तब तक चलता है जब तक चेला अपनी सामान्य स्थिति में नहीं आ जाता।

ऊपर जिन नृत्यों का वर्णन किया गया है वे सभी आदिवासियों और पहाड़ी लोगों के हैं। इनकी सामूहिक सामाजिक दृष्टिकोण प्रमुख विशेषता है। सभी लोग, जाति,

धर्म, वय और लिंग के भेद के बिना इनमें हिस्सा लेते हैं। यद्यपि सामुदायिक विकास-कार्यक्रमों ने इन लोगों के रहन-सहन को प्रभावित किया है किंतु इन नृत्यों में, जो इन की सांस्कृतिक विरासत है, कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इन नृत्यों को भारत के शास्त्रीय नृत्यों में न तो सैद्धांतिक रूप से और न व्यावहारिक रूप से शामिल किया जा सकता है। तथापि लगभग सभी नृत्य या तो आदिताल या रूपकताल पर चलते हैं।

लम्बाडी नृत्य

लम्बाडी समस्त आंध्र में फैली अर्ध-यायावर जन-जाति है जिसे बंजारा या सुगाली भी कहते हैं। सभी लम्बाडी महिलाएं नाचना जानती हैं। लम्बाडी नृत्य सरल किंतु मोहक होते हैं और फसल काटना, पौध लगाना, बीज बोना आदि दैनिक कार्यों से संबद्ध गति-विधियों से प्रेरित होते हैं। कांच के मनके और चमकदार बिंदलियांजड़ी उनकी पोशाक होती है और तरह-तरह के आभूषण अत्यंत दर्शनीय होते हैं। पीतल के खनकते हुए कड़े, लटकते हुए कौड़ियों के गुच्छे और कलाई से कुहनी तक हाथी दांत की चूड़ियां उनके नृत्यों को प्राकृतिक संगीत देती हैं। दशहरा, दीपावली और होली के अवसरों पर बंजारे घर-घर जाकर नाचते हैं और दान लेते हैं। बीस-तीस बंजारिनें जब रंग-बिरंगे कपड़े पहने, पानी से भरी चमकती पीतल की गगरियां सिर या कमर पर उठाए मिल कर नाचती हैं तो उनकी नाजुक कमर तथा हाथों की मनमोहक मुद्राएं दर्शकों के मन को मोहित कर देती हैं।

सिद्दी नृत्य

सिद्दी, जो 'अफ्रीका के मूल निवासी माने जाते हैं, हैदराबाद में बसे हुए हैं। ये लोग विवाह आदि के अवसरों पर आदिवासी नृत्य करते हैं। उनके नृत्यों में मूल देश के कबीला-युद्धों को पूरी भयानकता के साथ दिखाया जाता है। चमकती तलवारों और तोड़दार बंदूकों से सुसज्जित तथा विदेशी आदिम वेशभूषा में वे पूरी शक्ति के साथ नृत्य करते हैं।

बतकम्मा[1] उत्सव : बतकम्मा जो व्रतुकम्मा का अपभ्रंश रूप है, सारे तेलंगाना और रायलसीमा के कुछ भागों का अत्यधिक लोकप्रिय त्योहार है। यह असौज चंद्र मास की पहली तारीख से शुरू होकर दशहरे से एक दिन पहले महानवमी तक चलता है। यह

1. भारतीय लोक नृत्य में बतकम्मा के उद्गम के सम्बन्ध में कपिला वात्स्यायन और सच्चिदानंद ने जो जानकारी दी है, वह सही नहीं है।

त्योहार देवी लक्ष्मी की पूजा के निमित्त है जो राजा धर्मागद और रानी सत्यवती के घर व्रतुकम्मा के रूप में पैदा हुई थी। प्रत्येक गृहिणी इस दिन स्नान के बाद घास के डंठल, बांस या पीतल की थाली में विभिन्न रंगों के फूलों को स्तूप के आकार में सजाती है और उसके ऊपर सिंदूर की लक्ष्मी को स्थापित करती है। इसे बतकम्मा कहते हैं। पूजा के बाद इसे कमरे के कोने में रखा जाता है और शाम को सभी गृहणियां, नये कपड़ों तथा आभूषणों से सज धज कर बारी-बारी बतकम्मा को मंदिर अथवा झील या नदी के किनारे ले जाती हैं। सभी मूर्तियां समतल भूमि पर रख दी जाती हैं और स्त्रियां गीत गाकर, तालियां बजाकर नीचे झुक कर और ऊपर उठ कर उनके चारों ओर नृत्य करती हैं। अंत में भजन गाती हुई वे मूर्तियों को पानी में प्रवाहित कर देती हैं। त्योहार नौ दिन तक चलता रहता है और अंतिम दिन को **चद्दुला बतकम्मा** कहा जाता है।

बोड्डेम्मा

बोड्डेम्मा उत्सव बतकम्मा उत्सव के पूर्व के नौ दिनों में चलता है और महालय अमावस्या के दिन समाप्त होता है। बतकम्मा देवी लक्ष्मी की पूजा का त्योहार है तो बोड्डेम्मा देवी गौरी की पूजा का उत्सव है। यह त्योहार क्वारी लड़कियों का है। बोड्डेम्मा की प्रतिमा बांबी की मिट्टी से सात परतों में गोपुर के रूप में बनायी जाती है। इसे फूल, सिंदूर, कुंकुम से सजा कर साफ किए हुए और रंगोली आदि से सजाए हुए आंगन में स्थापित किया जाता है।

गली-मोहल्ले की सारी लड़कियां शाम के समय बोड्डेम्मा के गिर्द जमा होती हैं और नाच-गाकर गौरी से शीघ्र और सफल विवाह के लिए प्रार्थना करती हैं। यह त्योहार तटवर्ती आंध्र के लोकप्रिय त्योहार **गोबिल्लु** का प्रतिरूप है।

तप्पेता गुल्लु : यह नृत्य सही अर्थ में लोक कला का एक रूप है जिसमें नृत्य करने वाले मजदूर और किसान होते हैं। यह धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है और अब विशाखापट्टनम् तथा श्री काकुलम् जिलों के कुछ भागों में ही देखा जाता है। सारा दल दप्पेता गुल्लु (एक वाद्य जिसे प्रत्येक नर्तक गले से लटकाए रखता है) की बदलती ताल के साथ नाचता है।

डप्पु नृत्य : डप्पु गांवों में अत्यंत प्राचीन काल से प्रचार का लोकप्रिय माध्यम है। यह उत्तर भारत के **ढंढोरा** का प्रतिरूप है। डप्पु एक शक्तिपूर्ण नृत्य है क्योंकि डप्पु हरिजनों का एक शक्तिपूर्ण तालवाद्य है। विवाहादि के अवसरों तथा अन्य उत्सवों पर हरिजन **लेल्लेपाटलु** गाते हुए **वेगत** अर्थात् बाज नृत्य प्रस्तुत करते हैं। डप्पु की ताल

और नर्तकों की पदगति इतनी अच्छी तरह मिलती है कि धीमी और हल्की ताल जब तेज होते-होते चरम बिंदु पर पहुंचती है तो उन्मत्त डप्पुवादन तथा नर्तकों की तीव्र पद-गति को देख कर सिर चकराने लगता है। अनेक तालें बजाई जाती हैं और उसके साथ अनेक प्रकार के नृत्य किए जाते हैं। नर्तक जटिल पद-गति का प्रदर्शन करते और अपने अंगों को चलाते हुए एक ओर से दूसरी ओर उछलकर जाते हैं।

पुलिवेशम या बाघ-नृत्य : दशहरा और मुहर्रम के त्योहारों पर एक व्यक्ति द्वारा किया जाते वाला यह लोकप्रिय नृत्य है। एक सुगठित शरीर का व्यक्ति, कपड़े की पतली पट्टी कमर से बांध कर शेष सारे शरीर को बाघ के शरीर की धारियों जैसा रंगता है। सूक्ष्म शृंगार करके लंबी पूंछ के साथ वह बाघ की तरह बड़े-बड़े कदम रखता या छलांगें मारता हुआ डप्पु या मृदंगम् की ताल पर नृत्य करता है। आंध्र प्रदेश के कुछ भागों में नर्तक के पीछे बांधी भारी पूंछ को पीछे खड़ा दूसरा व्यक्ति उठाता है। नर्तक कभी-कभी पानी से भरे पीतल के बर्तन को दांतों से उठाता है। जिसका अभिप्राय यह दिखाना होता है कि क्रुद्ध बाघ कितना शक्तिशाली होता है और वह कैसे जानवरों को खा जाता है।

बुट्टा बोम्मलता : कठपुतली का खेल भारत की लोक-कला का प्राचीनतम जीवित रूप है। पुतलियां विभिन्न पदार्थों से बनती हैं और उन्हीं के अनुसार नाम होता है। बुट्टा बोम्मलता गोबर, भूसा और तिनकों को मिलाकर बनती है और बहुत सस्ती होती है। रथोत्सव समारोह या विवाह के अवसरों पर बड़े-बड़े पुतले उपहार में दिए जाते हैं जो डप्पु या मृदंगम की ताल पर नाचने वाले स्त्री-पुरुषों के लिए पूरे मुखौटे का काम करते हैं।

गोब्बी नृत्य : यह तटवर्ती आंध्र का संक्रांति के अवसर का विशेष नृत्य है। प्रत्येक घर के आंगन को साफ करके रंगोली से सजाया जाता है। गोबिल्लु अर्थात् गोबर के गोले रंगोली के बीच रखे जाते हैं और फूल तथा हल्दी-कुंकुम से पूजे जाते हैं। शाम को युवतियां इन गोबिल्लुओं के गिर्द नाचती और गाती हैं। विद्वानों का मत है कि यह नृत्य-शास्त्रों में वर्णित गरबा से आया है।

अश्व नृत्य : अश्व नृत्य गुंटूर जिले में लोकप्रिय है। गोबर, भूसा और तिनकों का एक पूरे कद का घोड़ा बनाया जाता है और उसे इस प्रकार चित्रित किया जाता है कि वह असली घोड़े जैसा दिखाई दे। इन पुतलों के मध्य में आदमी के आकार का सुराख होता है। नर्तक, स्त्री या पुरुष इस सुराख में खड़े होते हैं और इस प्रकार वे घोड़े की पीठ पर बैठे हुए लगते हैं। कभी अकेले और कभी दल में वे किसी प्रेम-प्रसंग को लेकर नृत्य करते हैं। गुंटूर जिले में घोड़े के पुतलों के अतिरिक्त वास्तविक घोडे

पर भी नृत्य किया जाता है। घोड़ों को ढोल की ताल पर नाचने का प्रशिक्षण दिया जाता है। घोड़े की पूंछ के पास छोटी-छोटी घंटियां बांधी जाती हैं। विवाहों तथा मेलों के अवसर पर अश्व नृत्य इस क्षेत्र में मनोरंजन का लोकप्रिय साधन है।

करूवा नृत्य ; पूर्व गोदावरी जिले का लोकप्रिय करूवा नृत्य, नृत्य शास्त्रों की 'कर्षणी' और उत्तर भारत की रासलीला से मिलता-जुलता है। आठ पुरुष गोपिकाओं के भेष में और आठ श्रीकृष्ण के भेष में, एक के बाद एक घेरे में खड़े होते हैं। घेरे के बीच दो नर्तक, राधा और कृष्ण के भेष में खड़े होते हैं। घेरे में चलते हुए वे विभिन्न तालों पर नाचते हैं। नृत्य में गति का अत्यधिक महत्त्व होता है। आम तौर पर चतुर्सरा, त्रिसरा और मिश्र गतियों का प्रयोग किया जाता है।

कोलाटम् : कोलाटम्, जिसे नृत्य-शास्त्रों में 'दंडिका' या 'दंडलास्य' कहा गया है, आंध्र और कर्नाटक के क्षेत्रों में बहुत प्रचलित है। आंध्र के प्रत्येक गांव में कम से कम एक दल कोलाटम् नृत्य करने वाला होता है। दल में बारह, सोलह या बीस नर्तक होते हैं और यह नृत्य लड़कियां भी कर सकती हैं। कोलाटम् में तीस से चालीस तक पद-गतियां हैं।

प्रत्येक नर्तक पांव में घुंघरू बांधे हाथ के दो डंडों को दाएं-बाएं के नर्तक के डंडों से टकराता है। कभी-कभी नर्तक दो घेरे बनाते हैं। एक अंदर एक बाहर। दोनों घेरों के नर्तक विपरीत दिशा में चलते हैं। नर्तक दल भजन-कीर्तन अथवा राधाकृष्ण के युगल गीत गाते हुए धीमी और तेज गति से नृत्य करते हैं। एक और प्रकार का कोलाटम् नृत्य होता है जिसे जाडकोलाटम् या वेणीकोलाटम् कहते हैं। इसमें नर्तक दल पेड़ के नीचे नृत्य करता है और पेड़ की शाखाओं से लटकती रस्सियां उनके हाथों के डंडों से बंधी होती हैं। अंदर और बाहर के घेरे की गतियां इतनी नियमित और समयबद्ध होती हैं कि पेड़ से लटकती हुई रस्सियां जाड या वेणी का रूप लेती हैं। जब नर्तक दल विपरीत दिशा में नृत्य करता है तो रस्सी की ये वेणियां फिर खुल जाती हैं। आजकल रस्सियों के स्थान पर रंग-बिरंगे रिबनों का प्रयोग किया जाता है और जाडकोलाटम् लड़कियों द्वारा त्योहारों तथा उत्सवों के अवसर पर सुशिक्षित दर्शक समूह के सामने मंच पर प्रस्तुत किया जाता है।

गर्गा नृत्य : देवी नवरात्री के त्योहार पर या ग्राम देवी की पूजा के समय गर्गा नृत्य किया जाता है। गर्गा मिट्टी या धातु का बरतन होता है जिसे रंग-बिरंगे कपड़ों, तथा हल्दी-कुंकुम से सजाया जाता है। पांच फनों वाला पीतल का सांप बरतन के मुंह के ऊपर रखा जाता है। नर्तक नीम के पत्ते हाथ में लेकर डप्पलु की ताल पर बड़े जोश से नाचते हैं। यह नृत्य गोदावरी के दो क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय है।

वीरनाट्य या वीर नृत्य

वीर-पूजा, अन्य ग्रामीण क्षेत्रों की तरह ही आंध्र प्रदेश की प्राचीन विशेषता है। प्रत्येक प्राचीन ऐतिहासिक स्थल पर हमें ऐसे वीरों की मूर्तियाँ मिलती हैं जिन्होंने अपने प्राणों की बलि चढ़ाई। जैसे, पालनाडु के युद्ध के वीर, काकातिय-युग के वीर और पंचलिंगलकोंडा युद्ध के वीर आदि। इन वीर नायकों को मूर्तियों तथा चित्रों में अमरत्व प्रदान किया गया है। करेमपुडि, गुरुजला और माचेरला जैसे स्थानों में वीर-नृत्य अब भी प्रचलित हैं। जब वीरशैव मत का प्राधान्य था तो यह नृत्य प्रणाली बहुत लोकप्रिय हुई। वीरशैव तीर्थ-स्थानों में इन नृत्यों को महाशिवरात्रि आदि त्योहारों पर अब भी प्रश्रय मिला हुआ है। एक हाथ में तलवार और एक हाथ में ढाल लिए हुए नर्तक वीर मुद्राएं धारण कर अभिनय करता है। **वीरनम्** या **वीरंगम** (एक प्रकार का तालवाद्य) के युद्ध नाम से भयोत्पादकता स्वरों की ताल पर नर्तक कदम रखता हुआ नाचता है। नृत्य करते समय वह गीत भी गाता है जिसे **खड्गलु** (तलवार-गीत) कहा जाता है। यह वीर-नृत्य ताण्डव शैली का होता है और इन तमाम वीर-नृत्यों में 'ऊर्ध्व ताण्डव' सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है जो महाशिवरात्रि के दिन 'लिंगोद्भव' के अवसर पर मंत्र-मुग्ध दर्शकों के सम्मुख आधी रात के समय किया जाता है।

आंध्र प्रदेश की शास्त्रीय नृत्य-शैलियों में '**कूचिपुड़ि** और **भामाकल्पम्** ही प्रमुख हैं। यद्यपि इनका संबंध प्राचीन भरतनाट्यम शैली से है, इनमें कुछ क्षेत्रीय परंपराएं, भिन्नताएं और विशेषताएं आ गयी हैं। मंदिर-नृत्यों और दरबारी नृत्यों की भी आंध्र प्रदेश में अपनी निजी शैलियां विकसित हुई हैं।

8

लोक-कला और मनोरंजन

आंध्र प्रदेश की कला और शिल्प का इतिहास बहुत पुराना है आंध्र प्रदेश के कुछ प्रांतों से प्राप्त प्रागैतिहासिक गुफाओं और अन्य प्राचीन अवशेषों से इस बात का प्रमाण मिलता है कि इस क्षेत्र के प्रारंभिक वासियों का कला के प्रति झुकाव था। पुरातन काल में विद्यमान भित्ति-चित्रकला और लोक-चित्रकला का प्रमाण ऐतिहासिक इमारतों, साहित्यिक और धार्मिक अभिलेखों से भी मिलता है। आज ही गांव की स्त्रियां शादियों और अन्य पवित्र अवसरों पर जैसे, कि व्रतों और धार्मिक समारोहों पर अपने घरों की दीवारों को कई प्रकार की चित्रकारी से सजाती हैं। जिस स्थान पर वर-वधू-आरिवेणी पात्रों की पूजा के लिए बैठते हैं, और वह दीवार जहां कुल देवता की मूर्ति रखी जाती है, प्राय: स्वास्तिक चिह्न और कमल आदि के फूल, मोर, हंस, तोता और हाथी तथा मगर आदि के अन्य डिजायनों से सजायी जाती है।

हैदराबाद और सिकंदराबाद शहरों में महाकाली और शक्ति के लगभग सभी मंदिरों में महिषासुरमर्दनी, महाकाली, दानव और दूसरे भक्तों के भयानक चित्र बने हुए हैं। इन मंदिरों की दीवारों पर कई पौराणिक कथाएं भी अंकित हैं। कुछ विशेष जातियां इस काम को निपुणता से करती हैं। कई आकार-प्रकार के मिट्टी के रंगीन बर्तन, टेराकोटा आकृतियां और पालिश किए हुए मृत्तिकाभांड आंध्र प्रदेश की खुदाइयों में निकले हैं जो अमरावती, नागार्जुन कोंडा और हैदराबाद के संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं। ये वस्तुएं मृत्तिका कला की अनवरत परंपरा का परिचय देती हैं। तेलुगु लोक-कला का ये उत्तम नमूना हैं जिनसे आंध्रवासियों के सांस्कृतिक जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

'मुग्गु' जिसे संस्कृत में रंगावली, बंगाली में अल्पना और गुजराती में रंगोली कहते हैं एक अन्य लोक-कला है जिसे गांव की सभी लड़कियां जानती हैं। यह कला संभवतया आंध्र के दैनिक-जीवन का एक अंग बन चुकी है। चावल का आटा या उसका घोल अथवा सुड्ड (सफेद मिट्टी) इस कला के लिए मूल सामग्री है। कई बार इस

मिट्टी को अनेक रंगों (जैसे सिंदूरी, पीला, हरा और नीला) के साथ मिलाया जाता है। घर का आंगन, फर्श और तुलसी का चबूतरा प्रातः काल मुग्गु के विभिन्न डिज़ाइनों से सजाया जाता है। ऐसा न करना हिंदु परिवारों में अशुभ माना जाता है। आंध्र प्रदेश में पारसी भी अपनें घरों के आंगन और फर्श सजाते हैं। यह एक आर्य और वैदिक प्रथा है। पुरातन काल में यह कला वधु की प्रवीणता की द्योतक मानी जाती थी।

मुग्गु के रंग-बिरंगे जटिल डिज़ायन बड़ें सुंदर लगते हैं। संक्रांति, पवित्र त्योहारों और शादियों के अवसर पर इनके अनेक मनमोहक नमूने देखने को मिलते हैं। रेखागणित के डिज़ाइन जैसे वृत्त, त्रिकोण और वक्र रेखाएं, पुष्प-नमूने, कमल बेल, मंदिर, रथ, मोर, तोते, सूर्य और चंद्र, लक्ष्मी, पार्वती, शंख, नंदीकेश्वर और नाग तांत्रिक और अन्य रहस्यवादी चिह्न रंग और बनावट में अत्यंत कलात्मक लगते हैं। मुंडक उपनिषद के श्लोक पर आधारित चित्र (पृष्ठ 124) इस लोक-कला में आंध्र की प्रतिभा को दर्शाता है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः सुमनामवृक्षम् परिषश्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अतिरश्नन्यः अभिवाकषीति ॥

(मुंडक उपनिषद तीन 11)

(दो अभिन्न मित्र पक्षी एक ही वृक्ष पर बैठे हैं। उनमें से एक मीठा फल खा रहा है और दूसरा बिना कुछ खाये केवल उसे देख रहा है)।



आंध्र में एक अन्य लोक-कला गोदना है। लगभग सभी जन-जातीय लोग और गिरि-

जन एवं स्त्रियां अपने शरीर को सजाने के लिए गोदना करवाती हैं। गांव के लोग इसे सौंदर्य का चिह्न मानते हैं। गाल अथवा ठोडी पर एक छोटा तारा, माथे पर पुष्प का नमूना, बाजू पर प्रिय का नाम, गांव की स्त्रियों के आकर्षण में विशेष वृद्धि करते हैं। तेलुगु में एक लोक-गीत है। जिसमें एक प्रियतमा अपने प्रियतम से जांघ पर सीता के चरण का चिह्न और राम के तीर का चित्र साढ़े चार आने दे कर अंकित करवा देने के लिए कहती है। हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति और पहलवान अपने बाजू, जांघ, मछली और छाती पर शेर, सांप, गरूड़, हनुमान, तलवार, खिले हुए कमल के नमूने अंकित करवाते हैं। पच्चबोटलावरू एक जाति है गोदना ही जिसका व्यवसाय है। शहरी सभ्यता के फैलने से गोदने की कला धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। गोदने का एक मात्र प्रयोजन जो अब भी प्रचलित है, प्रिय का नाम बाजू पर अंकित करवाना है।

मुखौटे बनाना आंध्र की एक और लोक-कला है। पेड्डम्मलवड्डु को एक रंग-बिरंगे मुखौटे की जरूरत होती है जिसे पहन कर वह भयानक नृत्य करता है। पेड्डम्मलवड्डु एक पेशेवर भिखारी होता है जो विभिन्न देवताओं की मूर्तियां एक डिब्बे में लेकर गांव में घूमता है। कुहनी से ऊपर बांह में बड़ा घाव करके वह चेहरा खून से लथपथ करके एक भयावह दृश्य पैदा करता है ताकि देखने वालों को उससे सहानुभूति हो। अपनी पीठ पर स्वयं कोड़े मारता है जबकि उसकी पत्नी ढोल बजाती है। ऐसे मुखौटों के अलावा नर्तक विभिन्न देवी-देवताओं, जानवरों और पक्षियों के पूरे आकार के मुखौटों का प्रयोग करते हैं। जो आकर्षक ढंग से रंगे होते हैं। इसका वर्णन पहले कर चुके हैं। यह लोक-कला कई कुटुंबों का विशेषतः तटवर्ती आंध्र में जीविकोपार्जन का साधन है।

आंध्र में कमलकारी (साड़ी और कपड़ों की छपाई) का लंबा इतिहास है। प्राचीन काल में बंदर (मछली पटनम, जिला कृष्णा) की छपी हुई साड़ियों की पूर्व और पश्चिम में अच्छी मांग थी। रंगरेज समुदाय इस कला में निपुण है। वे कागज पर आकर्षक डिज़ाइन बनाते हैं, लकड़ी के टुकड़ों पर उनकी नक्काशी करते हैं और फिर देसी रंग प्रयोग करते हैं। विभिन्न डिज़ाइनों के विभिन्न स्थानीय नाम हैं। आज भी यह कला फल फूल रही है और इससे आय भी अच्छी होती है।

ताड़ वृक्ष को आंध्र प्रदेश में कल्प वृक्ष का उपनाम मिला है। इसका प्रत्येक भाग उपयोगी है; विशेषकर इसके पत्ते। जब कागज की खोज नहीं हुई थी तो लिखने के लिए इनका प्रयोग किया जाता था। संभवतया यही कारण है कि आंध्र में पाण्डुलिपियां ताड़पत्रों में मिलती हैं। उत्तरी भारत में इसका प्रतिरूप भुर्जपत्र है। अब ये पत्ते कई और कारणों से भी उपयोगी हैं। गांवों में छत डालने के लिए इन्हीं का प्रयोग किया जाता है। कम्म और तंतक जो किसी समय कान के आभूषण थे ताड़ के पत्तों से बनाये

जाते थे। आजकल इनका प्रयोग बरसाती कोट, छाते, टोकरियां पंखे, चटाइयां, गुड़ियों के पिटारे, नाव की पतवार आदि बनाने में किया जाता है। ताड़ के मजबूत और साफ रेशे से फलों की टोकरियां, आभूषण, सिंदूर, कुंकुम, शीशे के डिब्बे, और महिलाओं के बैग आदि बनाये जाते हैं। अब इसका स्थान नायलन और प्लास्टिक ले रहे हैं।

सीता-पिरोणा जो विवाहयोग्य कन्याओं के लिए अतिरिक्त योग्यता मानी जाती थी, आंध्र प्रदेश में अब भी इसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। फूलों के नमूने, तोते और मोर के चित्र, हिरण, बारहसिंगे और पेड़-पौधे आदि नारी की कलात्मक उंगलियों की रचनाएं हैं जो सुई से तकिये के आवरण, चादरें, दरवाजे के पर्दे और स्त्रियों की अंगियों तथा ब्लाउजों को सजाती हैं। स्त्रियों को बेल-बूटेदार जरी गोटे वाली अंगिया और ब्लाऊज बहुत पसंद हैं। कशीदाकारी एक पुरानी लोक-कला है। शीशे के छोटे-छोटे पालिश किए हुए टुकड़े जैकेट और ब्लाऊजों पर टांके जाते हैं। यह चौकोर, वृत्त अथवा तिकोने होते हैं। ज्यामिति के नमूने, फूल, बेलें, पक्षियों के चित्र बनाये जाते हैं और रंग-बिरंगे धागों अथवा विभिन्न रंगों के कांच के मनकों से भी कढ़ाई की जाती है। कभी इस लोक-कला को शाही हरम का संरक्षण प्राप्त था और तब यह परिष्कृत हुई। ग्राम्यजनों की साधारण सामग्री के स्थान पर हीरे, जवाहर और सुनहरी जरी का प्रयोग होने लगा। विभिन्न प्रकार की कढ़ाई एक ऐसी लोक-कला है जो गांवों और शहरों दोनों में लोकप्रिय है।

आंध्र प्रदेश की गुड़ियां और कठपुतलियां अपनी सादगी और सौंदर्य के कारण प्रसिद्ध हैं। प्राचीन काल में हर एक छोटे-बड़े घर में एक **बोम्मारिल्लु** अर्थात् गुड़िया-घर होता था। यहां बच्चे गुड़िया रखते थे, उनका व्याह रचाते और खेल-भोज का आयोजन करते। इससे युवतियों को अपने भावी पारवारिक जीवन के काम-काज और कर्तव्यों का प्रशिक्षण मिलता था। हालांकि आधुनिक आवासीय भवनों में गुड़िया-घर के लिए कोई स्थान नहीं होता परंतु आंध्र में अब भी गुड़िया और कठपुतलियां सजावट के लिए घरों में रखी जाती हैं। दशहरा, दीपावली और सक्रांति के विशेष पर्वों पर आंध्र में हर घर में **बोम्मलाकोलुवु** अर्थात् गुड़िया की कचहरी लगायी जाती है। इसमें सर्वोत्तम गुड़ियां और कठपुतलियां विषयानुसार प्रदर्शित की जाती हैं। आजकल पौराणिक प्रसंगों के स्थान पर हमारे राष्ट्रीय-जीवन से संबंधित विषय दर्शाये जाते हैं। इन उत्सवों से गुड़िया और कठपुतलियां बनाने की महत्त्वपूर्ण कला के विकास का अवसर मिला है।

गुड़िया और कठपुतलियां कई प्रकार की चीजों से बनायी जाती हैं जो आंध्र प्रदेश के विभिन्न भागों में आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। समुद्र-तट और नदी-तल के सीप-घोंघे और कछुए के खोल प्राप्त हो जाते हैं। तटवर्तीय आंध्र में उत्पन्न होने वाले वृक्षों से नारियल के खोल मिल जाते हैं। इन क्षेत्रों में यह खोल विभिन्न प्रकार की गुड़ियां

बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। घर गांव में बढ़ई किसी भी प्रकार की साधारण लकड़ी से गुड़ियां बना लेते हैं। चित्तूर जिला लाल लकड़ी की गुड़ियों और कठपुतलियों के लिए प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध तीर्थ तिरूपति में लाल और काली लकड़ी से निर्मित विभिन्न प्रकार को गुडियां और बर्तन प्रत्येक दुकान पर देखे जा सकते हैं। सभी देवी-देवताओं विशेषतया भगवान वेंकटेश्वर और उनकी पत्नी, की लकड़ी से बनी गुड़ियां तिरूपति का विशेष आकर्षण हैं। स्वाभाविक है कि हर लड़का अथवा लड़की एक गुड़िया का डिब्बा खरीदे जिसमें घरेलू बर्तन और कई अन्य वस्तुएं होती हैं। विशाखापट्टनम और श्री काकुलम् जिलों में घने जंगल और जानवर हैं। इस क्षेत्र में भैंस के सींग से बनी गुड़ियां मिलती हैं। यह शिल्प आधुनिक कला में विकसित हो गया है। कई प्रकार की वस्तुएं जैसे लेम्प-स्टेण्ड, गुलदस्ते, कंघे, एस्ट्रे, सिगरेट-केस, नसवार की डिब्बी; पक्षी जैसे सारस, हंस, मृग, हाथी; और मनुष्यों की आकृतियां इन क्षेत्रों में सींग से बनायी जाती हैं।

कोण्डपल्लि गुड़ियों और कठपुलियों ने आंध्र प्रदेश में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की है। कोडपल्लि विजयवाड़ा के निकट कृष्णा ज़िले में एक ऐतिहासिक स्थान है। कोण्डपल्लि में एक विशेष जाति है जिसे गुड़िया बनाने में दक्षता प्राप्त है। आंध्र प्रदेश के विभिन्न ज़िलों में वे **नक्कासी, मुच्चि, जानीगार, चित्तारी** जैसे अनेक नामों से प्रसिद्ध हैं। कोण्डपल्लि के कलाकार **पोनिका** नामक लकड़ी प्रयोग करते हैं जो निकटवर्ती पहाड़ों और जंगलों में उपलब्ध हैं। इससे वे कई प्रकार के खिलौने बनाते हैं। पोनिका लकड़ी बहुत हल्की, नरम और लचीली होती है। इसे जोड़ने के लिए इमली की गोंद को लकड़ी के बुरादे में मिला कर प्रयोग किया जाता है। आकृतियों को गढ़ कर वार्निश और रंग करने से पूर्व उन पर चूना मला जाता हैं। कलाकार देसी सामग्री नील, सिंदूर, लाल चाक, सफेद मिट्टी और उनके मिश्रण से अनेक रंग तैयार करते हैं। देवी-देवताओं की मूर्तियों और उनके वस्त्रों के वार्डर आदि के लिए सुनहरे चमकीले पाउडर और द्रव का उपयोग किया जाता है। चित्रकारी न केवल कलात्मक होती हैं परंतु स्वाभाविक और यथार्थपूर्ण भी होती है। कोण्डपल्लि की गुड़ियों में अधिक लोकप्रिय हाथी, हाथी के साथ होदा, पालकी, झूला, कमल, लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती, ताड़ के पेड़ से ताड़ी निकालने वाला कृषक, श्रमिक, पुलिस का सिपाही, स्कूली छात्र, गाय, ठेला, दशावतार, राधा, माधव और नारियों की मूर्तियां होती हैं।

ग्रामीण नाटक

पालकुरिकि सोमनाथ ने, जो प्राचीनतम तेलुगु कवियों में गिने जाते हैं, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **पंडिताराध्य चरित्र** में उस समय प्रचलित अनेक प्रकार के तेलुगु लोक-

नाटकों का उल्लेख किया है। इनमें से नाटकों की कुछ किस्में अब भी सुरक्षित हैं और कुछ लुप्त हो चुके हैं। नाट्य-कला के कुछ रूप जो वंश दर वंश चले आ रहे हैं, यहां दिये जा रहे हैं :

यक्षगान

'यक्षगान' शब्द से प्रतीत होता है कि आरंभ में यह यक्ष अथवा यक्षिणी द्वारा गाये जाने वाले देसी संगीत का नाम था। कुछ समय पश्चात् एक से अधिक चरित्रों द्वारा किसी घटना के वर्णन के रूप में इसका विकास हुआ। अंत में इसने संगीत-नाटक का रूप ले लिया जिसमें विभिन्न गीत, संवाद और चरित्र होते हैं। हमारे प्राचीन ग्रंथों में गरुड़, गंधर्व और किन्नरों की भांति यक्षों को भी दैवी माना गया है। आंध्र में यक्षों को 'जक्कुलु' कहते हैं जो अनन्तपुर कुर्नूल, कृष्णा, गुंतूर, गोदावरी ज़िलों में पाये जाते हैं। प्राचीन काल से ही यह जाति नृत्य और नाटक को समर्पित है। आरंभ में यक्षगान में संवादों के अतिरिक्त जम्पे, त्रिपुट, अटताल, एकताल, द्विपद, एला, सोमना, धवला, मंगल आरती जैसी देसी रचनाएं होती थी। कालांतर में इसमें अनेक सूक्ष्मताएं तथा प्राचीन संस्कृति नाटक की विशेषताएं आयीं। तंजोर नायक-काल यक्षगान साहित्य की रचना और प्रस्तुतीकरण का सुनहरी युग माना जाता है।

यक्षगान एक प्रकार का संगीत-नाटक है। इसमें गीत भी होते हैं जो कथा प्रसंगों के अनुसार विभिन्न लयों में गाये जाते हैं। भले ही विषय दार्शनिक हो, इसमें संवाद चुटकुले होते हैं। पात्र ऐसे होते हैं जो भाषण करते है और गीत गाते हैं। विषय अधिकतर पौराणिक होते हैं लेकिन वे इस तरह प्रस्तुत किये जाते हैं कि जन साधारण को स्पर्श करें। पौराणिक कथानक से असंबद्ध भी एक दो चरित्र होते हैं जो दर्शकों की रुचि बनाये रखते हैं। ये चरित्र हमेशा दर्शकों के लोकप्रिय रहते हैं।

नाटिका की रचना सरल होती है। यह आरंभ और विकास की अवस्थाओं से होते हुए चरम सीमा और फल-प्राप्ति पर पहुंचती है। कई संवादों में सामयिक महत्त्व के अंश तत्काल जोड़ दिये जाते हैं। कई बार स्थानीय घटना को सवाद में प्रस्तुत किया जाता है। साधारण दर्शक इसे काल-दोष नहीं मानते और अभिनय से आनंदित एवं संतुष्ट अनुभव करते हैं।

पहले यक्षगान का विषय देवी-देवताओं और उनके महान कार्यों पर केंद्रित था। परंतु तंजोर-नायक काल में समकालीन विषयों पर नाटक लिखने का सफल प्रयास भी किया गया। इस प्रकार का एक नाटक रंगाजम्मा का **मन्नारुदास विलासम्** है जो उसने अपने प्रेमी राजकुमार विजय राघव नायक की महानता पर लिखा था। अपने दैवी विषय और चरित्रों के होते हुए भी ये नाटक साधारण व्यक्ति के बहुत निकट होते हैं

क्योंकि इनमें शिक्षा और व्यंग को सामान्य ग्रामीण चरित्रों की सहायता से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है।

पगति वेषालु

स्थानीय घटनाओं का प्रदर्शन करने वाले यक्षगान के कुछ चरित्रों ने अपना अलग स्थान बना लिया है। कई बार उन्हें व्यापक रोचकता को खोये बिना नाट्यांश रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उन्हें 'पगति वेषालु' कहते हैं। इसका शब्दार्थ है दैनिक चरित्र क्योंकि यह नाटिकाएं दिन के समय मंचित की जाती हैं। कलाकार, जो दो या तीन से अधिक नहीं होते, गांव-गांव घूमते हैं। वे एक गांव में एक सप्ताह या दस दिन रुकते हैं और हर रोज एक अभिनय प्रस्तुत करते हैं। अंतिम दिन गांव में भिक्षा मांगते हैं। यह आवश्यक था क्योंकि केवल यक्षगान अभिनय पर निर्भर ये कलाकार बारिश के दिनों में पूरे नाटक प्रदर्शित नहीं कर सकते थे। इस प्रकार के पात्रों में, **ददिनाम, सोमयाजो**, **सोली वेवम्मा**, **कोरवाजी** कुछ प्रमुख हैं।

कलपम

कलपम भी एक प्रकार का परंपरागत नाटक है। यह यक्षगान का अग्रगामी लगता है क्योंकि इसका विषय-विकास सरल और शिक्षा संप्रेषण प्रत्यक्ष है। बारिका की भांति यह एक-पात्री नाटक है। इसमें एक कलाकार प्रमुख होता है दूसरा कम महत्त्वपूर्ण होता है। हर पात्र अपना परिचय स्वयं देता है। सूत्रधार न केवल घटना-क्रम की व्याख्या करता है परंतु परिचय के रूप में उसका मुख्य काम प्रश्न करना, उत्तर देना और मुख्य पात्र द्वारा कही गयी अधूरी बातों को पूरा करना है।

कलपम साधारणतया एक लघु-नाटक है जिसमें सात्विक अभिनय पर बल दिया गया है और प्राय: इसमें दो पात्र होते हैं। इसमें भक्ति अथवा शृंगार-रस होता है।

मुख्य पात्र अपने अनुभवों का वर्णन करता है। उसका सहायक प्रश्न पूछता है। अथवा कोई टिप्पणी करता है।

इस प्रकार के परंपरागत नाटक में 'भामाकलपम' और 'गोल्लकलपम' अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। कहा जाता है कि सातवीं शताब्दी के सिद्धेंद्र योगी ने इनकी रचना की थी। उन्होंने वेश्याओं से इस नृत्य को मुक्त कराने के लिए ब्राह्मण लड़कों की पूरी टोली को नृत्य-कला में दीक्षित एवं प्रशिक्षित किया।

'भामाकलपम' सत्यभामा की कथा है जो भगवान कृष्ण के असह्य वियोग में उनके लौटने की प्रतीक्षा करती है। कूचिपुडि के नृत्य-पंडितों ने इसमें सूक्ष्म भावव्यंजना और

और जटिल मुद्राओं को सम्मिलित करके इसे लोकप्रियता एवं शास्त्रीय उत्कृष्टता के शिखर पर पहुंचा दिया है।

'गोल्लकलपम' एक दार्शनिक नाटक है। इसमें एक ग्वालिन एक ब्राह्मण को बताती है कि जब-जब धर्म पर संकट आता है तो भगवान पृथ्वी पर अवतरित क्यों होते हैं।

कई परंपरागत नाटक-मंडलियां इन नाटिकाओं का मंचन करती है। इनमें से एक कूचिपुडि नाट्य मंडली है जो परंपरा और अनुशासन को महत्त्व देती हैं। इनके द्वारा प्रस्तुत सर्वाधिक लोकप्रिय नाटक हैं 'भामाकलपम'। सत्यभामा या भामा बहुपत्नीक नायक श्रीकृष्ण की चहेती रानियों में से एक थी। श्रीकृष्ण के अत्यधिक अनुराग, ने सत्यभामा के मन में अहंकार उत्पन्न कर दिया। वह समझने लगी कि उसका अपने प्रेमी पर पूर्ण नियंत्रण है और वह दूसरी रानियों, विशेषकर रुक्मिणी, को हीनता से देखने लगी। यक्षगान में उसे एक ऐसी नायिका के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसे अपने सौंदर्य पर और प्रिय को वश में करने की अपनी शक्ति पर अभिमान है। वह अपनी सौतिनों से ईर्ष्या करती है।

जब श्रीकृष्ण अपनी चहेती रानी सत्यभामा के साथ प्रेम-लीला में लीन थे, तो उनमें वार्तालाप आरंभ होता है। उसके एक अविवेकपूर्ण उत्तर से क्षुब्ध होकर प्रेमी एकाएक उसका महल छोड़ कर चला जाता है जिससे अभिमानी रानी घबरा जाती है। अपने स्वामी से अलग होकर वह पीड़ा से तड़प उठती है। जब श्रीकृष्ण वापस नहीं आते हैं तो सत्यभामा विचारों में डूब कर प्रिय सखी को अपनी व्यथा सुनाती है :

"प्यारी सखी, एक दिन मैं अपने सिंहासन पर बैठी थी, जिस पर हंस के पंखों का बिछौना था। सिंहासन केलि-कक्ष में था और उसकी दीवारें हीरे-जवाहर से जड़ी थीं। मेरे स्वामी आये और उन्होंने अपनी बांसुरी बजायी। मैं गहरी नींद सोयी थी जो घोर अंधकार की भांति मेरे व्यक्तित्व पर छायी थी। फिर मेरे स्वामी सिंहासन के पास आये और मेरे पास बैठ गये। मैं असमंजस में पड़ी अचानक उठ बैठी। मैंने उनके शरीर पर चंदन आदि का लेप किया। मेरे स्वामी बिस्तर पर लेट गये। मैं उनके पास बैठी रही और उन के पवित्र चरणों को मलती रही फिर मेरे स्वामी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझे अपनी बाहों में लेकर गोद में बिठा लिया। उन्होंने मुझे नाना प्रकार के कीमती हीरों से सजाया। फिर एक आदमकद शीशा मेरे सामने रख दिया। जब मैं अपने प्रतिबिंब को देख रही थी, उन्होंने मुझे इस प्रकार संबोधित किया "ओ सत्या, क्या तुम अधिक सुंदर हो या मुझ में अधिक सौंदर्य और आकर्षण है।" फिर सुनो मैंने उन्हें क्या कहा ? बिना विचारे स्त्री—सुलभ अभिमान से मैंने कहा कि मैं अधिक सुंदर हूं। फिर मेरे स्वामी मुझ से रुष्ट होकर क्रोध में मुझे छोड़ कर चले गये। सखी, कहां गये ? प्यारी सखी, उनकी तलाश में मेरी सहायता करो।

उपरोक्त वार्तालाप की मोहक सादगी को लोक—श्रोता आसानी से समझ लेते हैं और उसका रसास्वादन करते हैं। सत्यभामा के अभिमान का पतन देख कर कृषक दर्शक संतुष्ट होते हैं। हास्य-विनोद के लिए किसी लोकप्रिय पात्र को लाया जाता है। वह दरबारी विदूषक जैसा होता है और मुख्य पात्र के साथ रहते हुए रोचक संवाद बोलता है।

कुरवंजी

इस प्रकार की संगीत-नाटिका का मूल लक्षण अध्यात्म-ज्ञान है। इसके पात्रों का प्रतीकात्मक महत्त्व है। जीवसती जीवात्मा का प्रतिनिधित्व करती है। क्रिया कांत जीवों के कर्मों की द्योतक है। सिगडु का अर्थ आदिम प्रकृति है। कुरवंजी ईश्वरीय प्रकाश है और सिंगी ब्रह्माण्ड की मूल चालक शक्ति है। लोगों को इन नाटिकाओं के माध्यम से बार-बार दर्शन की बातें बतायी जाती हैं। इस नाटकीय माध्यम से धर्म के मूल सिद्धांतों का रोचक ढंग से प्रतिपादन किया जाता है।

कुरवंजी का संबंध महिला-भविष्यवक्ता से भी है। परंपरा से ही एक विशेष वर्ग की कुछ महिलाएं भावी घटनाओं की भविष्यवाणी करने में प्रशिक्षित होती हैं। इसके बदले में चावल, धान, अनाज, अथवा पैसे लेती हैं क्योंकि उन्हें भविष्य-कथन की शक्ति से संपन्न माना जाता है। अतः उसकी काफी मांग रहती है। गांव की गलियों में ऐसी भविष्यवक्ता को देखने के लिए लोग उत्सुक रहते हैं।

उसकी गर्जना "एरुका" का अर्थ है जागरूकता (अर्थात् अंतिम सचाई के अस्तित्व के प्रति सचेत होना)। एक परंपरागत गीत है जिसमें निकटस्थ स्थानों के देवी-देवताओं का आह्वान करके भगवान को नमस्कार किया जाता है और उसके बाद भविष्यवाणी आरंभ होती है। भविष्यवाणी पहेली या मार्मिक सूक्ति के रूप में होती है। उस की पंक्तियां ऐसी होती हैं कि सांसारिक दुखों से चिंतित कई लोगों पर घटती हैं। इनके ग्राहक मुख्यतया परेशानियों से घिरे गृहस्थी होते हैं, जिनकी या तो संपत्ति खो गयी है, अथवा जो संपत्ति प्राप्त करने के इच्छुक हैं; जिनके पालतू जानवर खो गये हैं, अथवा जिनके निकट संबंधी और प्रियजन बीमार हैं। "एरुका" की खोज से उन्हें बहुत प्रसन्नता मिलती है।

इस प्रकार के व्यक्ति का परिचय नाटक में दिया जाता है। मंच पर कुरवंजी के आगमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा की जाती है और पूरे नाटक में वह आकर्षण का केंद्र होता है। उसकी गर्जना से बीते हुए दृश्य का तनाव समाप्त हो जाता है जिसमें व्याकुल प्रेमी का विलाप दिखाया गया था। कुरवंजी का यह चरित्र विशेषतया प्रेम-कथानकों में आता है। कई बार प्रेमी स्वयं कुरवंजी की भूमिका करता है और विलाप करती

प्रेमिका से बात करने का मौका प्राप्त करता है। इस मिलाप से उसका प्रेम सफल हो जाता है।

वीथि-नाटक

यह नाटक गलि-मोहल्लों के खुले वातावरण में खेला जाता है। नाट्यशास्त्र में प्राचीन लेखकों ने वीधि को एक प्रकार का नाटक कहा है। परंतु ग्रामीण "वीधि नाटक" इससे भिन्न है। इस प्रकार के नाटक को जन्म देने का श्रेय शैव कवियों की समर्पण भावना को है। प्रायः यह नाटक महाकाव्यों पर आधारित होते हैं। कुछ चरित्र दर्शकों के जाने-पहचाने प्रिय पात्र होते हैं। इस प्रकार के खुले रंगमंचों पर पर यक्षगान प्रस्तुत किये जाते हैं।

कई कलाकारों को अभिनय कला विरासत में मिलती है। वे जगह-जगह भ्रमण करते हैं। यद्यपि ये लोग पेशेवर कलाकार होते हैं। परंतु वे केवल आर्थिक लाभ के लिए अपनी कला का प्रदर्शन नहीं करते। गांव का मुखिया अथवा जमींदार कई बार इन दलों को गांव में नाटक खेलने के लिए आमंत्रित करता है। नाटक के बाद कलाकार अपने देश में घर-घर जाते हैं और जो कुछ भी मिलता है, ले लेते हैं। वे काफी धन अर्जित कर लेते हैं पर फिर भी दरिद्र ही रहते हैं। इतिहास से पता चलता है कि कूचिपुडि के कलाकार पंद्रहवीं शताब्दी से चले आ रहे हैं। उन्हें विजयनगर के महाराजाओं का आश्रय प्राप्त था और पर्याप्त धन मिलता था। बाद में गोलकुण्डा के कुतुबशाही राजाओं के शासन काल में इन कलाकारों को प्रोत्साहित और पुरस्कृत किया गया। उपहार में उन्हें भूमि दी गयी। उनकी कला को सराहा गया और उसे जारी रहना निश्चित बनाया गया।

बोम्मलता या कठपुतली कला

कठपुतली का खेल प्राचीनतम भारतीय लोक-कलाओं में से एक है। इतिहास के अनुसार सातवाहन के समय में भी आंध्र प्रदेश में यह कला प्रचलित थी। कला समीक्षकों का मत है कि कठपुतली की कला आंध्र प्रदेश से इन्डोनेशिया, कम्बोडिया, मलेशिया, थाई देश, बर्मा, और वहां से अफ्रीका, यूनान, मेसोडोनिया, बाईजेंटाइन साम्राज्य तक फैली। नाटक के पात्रों की छोटी-बड़ी आकृतियां लकड़ी पर या चुनींदा परिष्कृत चमड़े पर बनायी जाती हैं। उनकी अर्द्धपारदर्शकता प्रदर्शन में सहायक होती है। अर्द्धपारदर्शक चमड़े की बनी पुतलियों को प्रकाशित पर्दे पर दिखाया जाता है तो पीछे से आने वाले प्रकाश से पुतलियां वास्तविक लगती हैं। बोम्मलता कठपुतली का खेल है सूत्रधार जिसका दक्ष कठपुतली-कलाकार होता है। यह पुतलियां लकड़ी, रुई आदि की

बनी होती हैं। **'टोलु बोम्मलता'** खेल परिष्कृत चमड़े से निर्मित पुतलों से किया जाता है। इन पुतलों को प्रस्तुत करने के तरीके भिन्न-भिन्न हैं। इनमें मुख्य चार हैं।

मैरियोनेट या सूत्र कठपुतलियां

पुतलियां बनाने के लिए अलग-अलग अंग बनाने पड़ते हैं जो मूर्ति से जोड़ दिये जाते हैं। धागे से उन्हें नचाया जाता है और यह काम बड़ी दक्षता से उंगलियों अथवा हाथ से किया जाता है। मानवीय भावनाओं और मनोवेगों का आभास देने वाली मुद्राओं और प्रवृत्तियों का सूत्रधार का अध्ययन इतना सूक्ष्म एवं पूर्ण होता है कि वह धागों की सहायता से यथार्थ प्रभाव पैदा करने में सफल होता है।

घुमक्कड़ भविष्यवक्ता, जो अधिकतर महिलाएं होती हैं, अपने झोले में धागों से नाचने वाली पुतलियां रखती हैं। स्वयं प्रहसन का पाठ तैयार करके वे उसे अपने भावी ग्राहकों के सामने प्रदर्शित करती हैं। यह उन ग्राहकों को आकर्षित करमे का तरीका है जो कठपुतली वाले से अपने भविष्य के विषय में जानना चाहते हैं।

तोड़ुगु बोम्मालु

एक अन्य किस्म की कठपुतलियां "तोडुगु बोम्मालु" हैं जो 'दस्ताना कठपुतलियां' कहलाती हैं। पुतले के खोल में हथेली डालकर उंगलियों से उसके विभिन्न अंगों को हिलाया जाता है जो धागे से शिथिल रूप से बंधे रहते हैं।

ऊचा बोम्मालु

यह छड़ीनुमा कठपुतली होती है। पूरी आकृति छड़ी के ऊपर लगी होती है जिसमें से धागे गुजरते हैं।

तोलु बोम्मालु

यह रंगीन चमड़े की पुतलियां छाया-नाटक के लिए होती हैं। ये मृग अथवा बकरी के चमड़े की बनती हैं जिसे अच्छी तरह कमाया और परिष्कृत किया जाता है। इसके प्रदर्शन रात्रि को होते हैं। मजबूती से बांधे हुए पर्दे के पीछे कुछ दूरी पर एक तेज रोशनी की बत्ती आदि रखी जाती है। पुतलियों को नचाने वाले तीन या चार व्यक्ति होते हैं जिनमें आमतौर पर महिलाएं होती हैं। ध्वनि नियंत्रण बहुत बढ़िया होता है। वे मानव, पशु या अन्य किसी भी प्रकार की आवाज पैदा कर सकते हैं। भाषण, संगीतमय गीत, और अभिनय या आकृतियों के मुद्रा-परिवर्तन में पूरा तालमेल होता है। इस सातत्य से दर्शकों को नाटक का आभास हो जाता है।

जीविकोपार्जन के लिए कठपुतली वाले देश भर में विचरते हैं। कथाएं प्राय: पुराणों अथवा महाकाव्यों के साहित्य से ली जाती हैं।

संस्कृत में इन खेलों को 'छाया-चित्र' कहते हैं। आधुनिक सिनेमा का यही प्रारंभिक रूप रहा होगा।

बलकम

यह एक ऐसा नाटक है जिसका कथानक उसी समय तैयार किया जाता है। चार सुघड़ अभिनेता मंच पर एकत्र होते हैं। किसी विषय पर सोचते हैं और इसे तत्काल नाटकीय मुद्राओं में प्रस्तुत कर देते हैं। प्राय: विषय का संबंध दैनिक-जीवन से होता है और उसे हल्के-फुल्के ढंग से विनोदपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया जाता है। सारे नाटक पर विदूषक छाया रहता है और उसकी बातें दर्शकों के लिए हमेशा मनोरंजक होती हैं। सामाजिक बुराइयों पर स्थूल व्यंग्य कसे जाते हैं और हास्यास्पद व्यक्तिगत आदतों की खिल्ली उड़ायी जाती है जिससे दर्शक प्रसन्न होते हैं। प्राय: गांव का अधिकारी, कर-संग्रहकर्ता, छैला और कंजूस उनके लक्ष्य होते हैं। भाषण चटाखेदार और व्यंग्य तीखा होता है। इस प्रकार का लोक-नाटक केवल विशखापट्नम् जिले में प्रचलित है।

बुर्रा कथा

यह झांझ-मंजीरे और ताल-वाद्यों की सहायता से कथा कहने की शैली है। इस मंडली में कम से कम 3 भाट होते हैं जो पारिवारिक परंपरा से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। वे रात भर श्रोताओं को व्यस्त रखते है। गीतों द्वारा वर्णित ये कथाएं प्राय: आंध्र प्रदेश के वीरों के संबंधित होती हैं।

संगीत शैली में कथा सुनाने की प्रथा रामायण युग से चली आ रही है। महाकवि बाल्मीकि ने अपनी महान कथा का प्रचार लव कुश नाम के दो कुशल चारणों द्वारा किया था। उन्होंने राम की गाथा अपने देशवासियों और अंत में राजा के सम्मुख गायी। यद्यपि महाकाव्य के पाठ को क्लासिक (मार्गशैली) का दर्जा प्राप्त हुआ। इसका प्रचार लोक-माध्यम (देसी) से हुआ। बाद में, समय बीतने के साथ गेय कविता लिखने की इस परंपरा में क्षेत्रीय परिवर्तन होते गये। इसका मुख्य उद्देश्य प्रचार, मनोरंजन और ग्रामीणों के लिए दैनिक-जीवन की उकताहट से मुक्ति का अवसर जुटाना था। आंध्र प्रदेश में विभिन्न वंशों के शासन काल में चारणों द्वारा मनोरंजन की यह विद्या काफी लोकप्रिय थी। काकातीय युग और उसके तुरंत पश्चात् शैव प्रचारकों ने गेय कविता की इस शैली पर एकाधिकार जमाया। शैव संप्रदाय के उग्र वर्ग ने, जिन्हें वीरशैव कहा जाता है, आंध्र में जैन धर्म के प्रसार को रोका। शिव-भक्त, जिन्हें 'जंगम'

कहा जाता था, विशेष रूप से जन-समूह के सम्मुख यह संगीतमय व्याख्यान प्रस्तुत करते थे। उनके संग्रह में भगवान शिव की कथाओं की बहुलता होती थी,
शैवों की प्रतिस्पर्द्धा से वैष्णवों ने भी इस विधि को अपनाया। उनको चार वर्गों में बांटा जा सकता है। गायक वर्ग की संरचना और उनके शिल्प में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

ग्वालों ने 'काटमराजु कथा' में निपुणता प्राप्त की। यादवों का एक मुखिया पशुधन का स्वामी था। उसे नेल्लोर के तेलुगु चोल मुखिया मनुम सिधी की सेना से युद्ध करना पड़ा था। यह युद्ध आशु रचना का विषय बना। इसमें लोगों के मनोरंजन के साथ-साथ वैष्णवों की विजय दर्शायी जाती थी।

पिच्चुगुंतल इसी प्रकार के भाटों का एक और दल है। ये साधारणतया पालनाडु के वीरों की गाथाएं गाते हैं। ये भाइयों की एक पारस्परिक कलह की घटना है जिसके परिणामस्वरूप कचरेला, गुरजल और करेमपुडि के निकट युद्ध हुआ। उन वीरतापूर्ण कारनामों का वर्णन सशक्त और संगीतमयी भाषा में किया जाता है जो अब बहुत लोकप्रिय है। इस गीत के रचयिता महान कवि श्रीनाथ के अतिरिक्त और दो अन्य व्यक्ति बताए जाते हैं।

बावनिलु गेय काव्य लिखने वालों का एक अन्य वर्ग है। वे एलम्मा कथा (परशुराम के माता-पिता की कथा) का वर्णन करने में प्रवीण होते हैं। जमदग्नि क्रोध में आकर अपनी पत्नी पर संदेह करते हैं जो अभी नदी से पानी का घड़ा लेकर लौटी है। वे अपने चार पुत्रों को उसका सिर काटने का आदेश देते हैं। पहले तीन पुत्र झिझकते हैं और मातृवद्ध का क्रूर कार्य करने से इन्कार करते हैं। परंतु चौथा पुत्र परशुराम अपनी माता का सिर काट देता है। पिता अपने पुत्र की कर्त्तव्यनिष्ठा पर प्रसन्न होकर उससे वरदान मांगने के लिए कहते हैं। पुत्र माता को पुनः जीवित करने की प्रार्थना करता है। माता पुनः जीवित हो जाती है। यह कथा मुनि-पत्नी एलम्मा की भक्ति करने वाले सम्प्रदाय का आधार है।

जक्कुलु एक अन्य लोक-गायक वर्ग है। ये लोग दिन के समय कामेश्वरी बहनों की कथा का वर्णन करते हैं। यह गीत पूजा के अनुष्ठान का एक अंग है।

ये दल लोगों का मनोरंजन करने के लिए प्राचीन कथाएं सुनाते हैं। कलाकार पेशेवर होते हैं। ये परिवार अब भी जीवित हैं, परंतु श्रोताओं की रुचि में परिवर्तन हो जाने के कारण अब इन गायकों को वहां प्रोत्साहन नहीं मिलता और ये लोग अन्य धंधे करने लगे हैं।

आजकल इस माध्यम का उपयोग विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा अपने दल और

चुनाव का प्रचार करने के लिए किया जाता है। सरकार भी अपनी योजनाओं और कार्यों के प्रचार के लिए इनका उपयोग करती है।

हरिकथा

बुर्राकथा के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में यह भी मनोरंजन का सर्वाधिक लोकप्रिय साधन है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, यह हरि अर्थात् भगवान की कथा है परंतु इसका रूप यक्षगान से बहुत मिलता जुलता है। वास्तव में यह वर्णनात्मक यक्षगान ही है। यक्षगान और हरिकथा साहित्य, स्वरूप तथा लेखन-शैली में समान है। अंतर केवल यह है कि यक्षगान में कई व्यक्ति भिन्न-भिन्न पात्रों की भूमिका निभाते हैं जब कि हरि-कथा में एक ही व्यक्ति जो कि वर्णन करने वाला भी होता है, अपनी भाव-भंगिमाओं और संवादों द्वारा, बिना मेकअप के सभी चरित्रों के संवाद आदि नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करता है।

हरि की प्रशंसा में गीत गाने की पुरानी परंपरा से इस नाम का जन्म हुआ। परंतु इसकी परिभाषा में शीघ्र ही विस्तार हुआ और शिव, विष्णु की कथाओं तथा अन्य धार्मिक और पौराणिक कथाओं के वर्णन के लिए भी इसका उपयोग होने लगा। वर्णन करने वाला बहुमुखी प्रतिभावाला होना चाहिए। यदि ठीक ढंग से प्रस्तुत की जाए तो हरिकथा नाटक जैसी प्रभावशाली हो सकती है। इस एक-व्यक्ति नाट्य रूप को बहु-मुखी प्रतिभा के धनी विजय नगरम के आदिभटला नारायणदासु ने लोकप्रिय बनाया, जिनकी प्रस्तुति में संगीत, नृत्य और नाटक का मधुर संगम माना जाता था।

भजन मंडलियां

पुराणों में इसका उल्लेख है कि भक्तजन आत्मसमर्पण तथा आनंदानुभूति के क्षणों में स्वयं को भूल कर ईश्वर की स्तुति में गीत गाते हैं। प्रह्लाद और नारद के विषय में यह बात कही जाती है। महान वैष्णव संत चैतन्य भी ध्यान-मग्न होकर गाते थे। इससे सामूहिक गान की परिपाटी चली। गीत में ईश्वर का नाम एक व्यक्ति लेता है और उसके पश्चात् मंडली के अन्य सदस्य उसे दुहराते हैं। आसानी से हाथ में पकड़ी जा सकने वाली विभिन्न प्रकार की लकड़ी की खड़तालें, प्रयोग की जाती हैं। गीत ताल पर गाये जाते हैं। इसका अभ्यास लंबे समय तक चलता है और गाने में पूरी रात बीत जाती है। कई बार वृत्ताकार घूमते हुए और कभी जुलूस में चलते हुए भी भजन गाये जाते हैं। त्योहारों के अवसर पर भजन गाने के लिए इन मंडलियों को आमंत्रित किया जाता है। ये लोग यात्रा करने निकलते हैं और रास्ते में भजन गाते

चलते हैं। प्राय: ये गीत जैसे त्यागराज, भद्राचल, रामदास, नरसिंहदास, नित्तल, प्रकाशदास, ताटंकम् वेंकटदास महान संत गायकों के होते हैं।

बहुरूप

इस प्रकार का नाटक भी लोक-मंच के भंडार की एक रचना है। अभिनय, गायन और भाषण में प्रवीण एक कलाकार कई पात्रों का अभिनय प्रस्तुत करके श्रोताओं का मनोरंजन करता है। नृत्य-शास्त्रकार बहुरूप को लोक-साहित्य का एक रूप मानते हैं। काकातीय काल के जयसेनानी ने अपनी पुस्तक 'नृत्त रत्नावली' में, जो नृत्य-शास्त्र की रचना है, इस की व्याख्या इस प्रकार की है :

"इस प्रकार का नृत्य करने वालों में निम्नलिखित गुण होने चाहिए। उसमें कवि की कल्पना हो। वह दूसरों की मिथ्या प्रशंसा करने में दक्ष हो। वह ललित कला का अच्छा समीक्षक हो। वह तरुण और सुंदर हो। न तो वह अधिक लम्बा हो न अधिक नाटा। उसे अनेक भाषाओं में प्रवीण होना चाहिए। वह बलवान और स्वस्थ होना चाहिए और इतना शक्तिशाली होना चाहिए कि वह थके नहीं। वह गा सकता हो और बिना तैयारी के भाषण दे सकता हो। उसे झटपट मेकअप बदल कर विभिन्न भूमिकाओं में प्रकट होने में समर्थ होना चाहिए। उसमें श्रोताओं का भरपूर मनोरंजन करने की क्षमता होना चाहिए।"

इनके अतिरिक्त नृत्य शास्त्रों में वर्णित देशी अर्थात् लोक नाटकों के कई अन्य रूप भी हैं।

परिशिष्ट-एक

यक्षगान

हालांकि कंदुकुरी रुद्र कवि रचित 'सुग्रीव विजयमु' (1568) विद्यमान यक्षगानों में प्राचीनतम माना जाता है, चक्रपुरी राधवाचार्य की रचना 'विप्रनारायण चरित्रमु' (1545) सुग्रीव विजयमु से भी पहले की है। मद्रास के ओरियंटल मैनुस्क्रिप्ट पुस्कालय में (डी० सं० 1939) 'विप्रनारायण चरित्रमु' की पाण्डुलिपि की एक ही प्रति है। पुस्तकालय के लिए इसे कर्नल मकेंजी ने प्राप्त किया था। इसके बावजूद कि कहीं-कहीं पाण्डुलिपि के पृष्ठ खराब हो गये हैं, और पहला और तीसरा पन्ना खो गया हैं, इसके कथा भाग के किसी भी अंश को अधिक हानि नहीं पहुंची है।

यह कथा महान वैष्णव भक्त विप्रनारायण के जीवन से संबंधित है जिन्हें तोंदरा-दिपोडि आलवार भी कहते हैं। एक ऋषि के प्रेमी बनने की कथा रोमानी और भक्त कवियों दोनों के लिए अनगिनत अवसर प्रस्तुत करती है और कम से कम तीन काव्य इस पर आधारित माने जाते हैं। तंजावुरु के विजय राघव भूपाल ने भी 'विप्रनारायण चरित्रमु' के लेखक की भांति इस विषय को यक्षगान का रूप दिया। इसके पश्चात उत्तर रंग कवि ने अपनी कृति 'भक्तांघ्रिरेणु चरित्रमु' (अप्रकाशित) में इस विषय को लिया है।

'विप्रनारायण चरित्रमु' के लेखक के बारे में कुछ ज्ञात नहीं परंतु राधवाचार्य की रचनाओं के वाक्य-विन्यास एवं शब्द-विन्यास से समानता होने के कारण अनुमान लगाया जा सकता है। राधवाचार्य की रचनाओं और 'विप्रनारायण चरित्रमु' की भाषागत विशेषताओं में इसकी समानता है कि राधवाचार्य को आसानी से इस यक्षगान का लेखक माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें दोद्दयाचार्य का भी उल्लेख है जिन्हें राधवाचार्य का गुरू माना जाता है। इस बात से उक्त परिणाम की पुष्टि होती है और राधवाचार्य को नाटक का रचयिता माना जा सकता है।

कथा

कथा का शुभारंभ गुरु दोद्दयाचार्य की स्तुति से होता है जो एक प्रख्यात गुरु थे। उनकी ख्याति उन चौहत्तर गुरुओं के समान थी जिन्होंने सब से प्रसिद्ध गुरु के रूप में सिंहासन प्राप्त किये थे। अन्य धार्मिक संप्रदायों के नेताओं के साथ हुए शास्त्रार्थ में दोद्दयाचार्य विजयी हुए थे। स्तुति के पश्चात् घटिकाचल (शोलिंगर) के भगवान नरसिंह को श्रद्धांजलि अर्पित करने वाली पंक्तियां हैं। स्तुति में भगवान हरि द्वारा दुष्टों का संहार करने और सदाचारी पुरुषों के उत्थान के लिए दस बार इस ससार में अवतार लेने का वर्णन है। इसके पश्चात् कथा आरंभ होती है।

संगीत नाटक की वस्तु को गीतों में प्रस्तुत किया गया है। कथा नायक विप्रनारायण की उत्पत्ति से आरंभ होती है, जो पिछले जन्म में भगवान विष्णु के कंठ की दैवी माला थे। मंदम् गुडि गांव में, जो वैदिक कथा के अनुसार विद्वानों को अग्राहार के रूप में उपहार में मिला हुआ था, भगवान विष्णु के एक भक्त रहते थे। एक धर्मात्मा दंपत्ति के घर विप्रनारायण का जन्म हुआ था। बच्चे के मन में भगवान रंगनाथ के प्रति श्रद्धा और स्नेह का विकास हुआ। कुछ समय पश्चात माता-पिता ने बालक का उपनयन संस्कार किया।

विप्रनारायण श्रीरंगम के स्वामी भगवान रंगनाथ के ध्यान में लीन रहते थे और उन्हें संसारिक जंजाल से घृणा हो गयी। वे भिक्षा मांग कर निर्वाह करते थे। और बड़ी श्रद्धा से भगवान की सेवा करते थे। उन्होंने एक उपवन अस्त-व्यस्त देखा और अपना सारा समय उसे ठीक करने में लगा दिया। उन्होंने धरती को समतल किया, नालियां खोदीं, वृक्ष लगाये और कालांतर में उसे एक सुंदर पुष्पोद्यान और फल-वाटिका के रूप में विकसित किया।

(इस स्थान पर पाण्डुलिपि का एक पन्ना खोया हुआ है परंतु यक्षगान के संपादक के विचार में इससे कोई अधिक हानि नहीं हुई है।)

कथानक आगे बढ़ता है और नायिका देवदेवी का प्रवेश होता है। रंगनाथ के नगर में, जिसे श्रीरंगम् भी कहते हैं, एक राजनर्तकी के घर कन्या का जन्म हुआ। उसकी माता विट कंटकी के नाम से प्रसिद्ध थी जिसका अर्थ है विलासी लंपटों के लिए कंटक के समान। सुंदर कन्या देवदेवी ब्रह्मा की सृष्टि की गौरवपूर्ण रचना थी।

देवदेवी अत्यधिक सुंदर थी और उसकी सौंदर्य वर्णन में तीन गीत लिखे गये हैं। उसका सौंदर्य स्वर्ग के देवताओं को भी मोह सकता था। अट्ठाईस पंक्तियों के एक गीत में नायिका के शृंगार का वर्णन है। मनमोहक वस्त्र पहन कर वह अपनी बड़ी बहन और दासियों के साथ चोल राजा के दरबार में गयी। उसने वहां गायन का कार्यक्रम

प्रस्तुत करके अपने कलात्मक गुणों का प्रदर्शन किया और सात प्रकार के राजकीय उपहार (सप्तांग) प्राप्त किये।

वहां से लौटते हुए देवदेवी श्री रंगनाथ के महान नगर के उपनगरों से गुज़री। वह विप्रनारायण द्वारा लगाये और श्रद्धा से तैयार किये गये उपवन के पास से निकली। उपवन की मधुर सुगंध और ठंडी छाया ने देवदेवी और उसकी बहन पर जादू-सा कर दिया। इस पर वे प्रसन्न हुई तथा उन्होंने अपने भाग्य को सराहा। यह उपवन श्री रंगनाथ को समर्पित था और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थीं कि इससे थके हुए प्राणियों को सुख-शांति मिलती थी।

ऋषि-समान विप्रनारायण धरती को कुदाली से साफ कर रहे थे। पानी से धरती को सींचते और फूलों की क्यारियों के बीच चलते हुए वे अपने आराध्य भगवान रंगनाथ के ध्यान में मग्न थे। इनके कार्य सरल, चाल शालीन और भक्ति सम्पूर्ण थी। वे अपने कार्य और प्रार्थना में इतने मग्न थे कि उन्होंने उपवन में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों की ओर ध्यान नहीं दिया। देवदेवी ने साधु जैसे उस माली को देखा और उसकी हंसी उड़ाते हुए अपनी बहन से कहा :

बहन, जब से हम यहां आये हैं इस व्यक्ति ने हमारी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। कैसा विचित्र आदमी है। यह, जो देखने में भक्त प्रतीत होता है इसने न तो हमारा स्वागत किया और न ही यह जानने का प्रयास किया कि हम कौन हैं और यहां क्यों आये हैं ? हमें ऐसे व्यक्तियों से सावधान रहना चाहिए।

बड़ी बहन को यह अच्छा नहीं लगा और उसने बहन को इस असंगत टीका-टिप्पणी के लिए झिड़का।

वे श्री रंगनाथ के धर्मात्मा भक्त हैं। उनके बारे में तुच्छ विचार मन में लाना पाप है। ऐसे तेजस्वी के दर्शन मात्र से ही सारे पाप दूर भाग जाते हैं। वे बहुत बड़े विद्वान हैं।

देवदेवी ने उत्तर दिया :

इतनी प्रशंसा क्यों। पराशर, बाल्मीकि, शुक और कौशिक जैसे तेजस्वी व्यक्तियों को स्त्री ने मोह लिया था। वे सब आकर्षण का शिकार हुए। इस व्यक्ति के मन को लुभाना क्या कठिन है ? मैं उसे जाल में फंसा कर अपने दरवाज़े पर ले आऊंगी।

मैं उसे ललचाने और लाने में असफल रही तो मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगी और जो कुछ भी कहोगी करूँगी ।"

इस प्रकार सौगंध खाकर उसने अपनी बहन और अन्य दासियों को दूर भेज दिया ।

देवदेवी वहीं रुक गयी । उसने अपने सभी आभूषण और कीमती वस्त्र एक झाड़ी में में छिपा दिये । मुनि को लुभाने का अपना प्रण पूरा करने के लिए उसने नया रूप धारण किया । उसने संत प्रकृति के विप्रनारायण को मोहित करने के लिए कई बहाने किये और कई रूप धारण किए ।

उसने एक मुनि-स्त्री के वस्त्र धारण किये । वह भगवान विष्णु की एक भक्तिन-सी दीखने लगी । बनावटी भक्ति में भगवान रंगनाथ का नाम लेती हुई वह ऋषि के पास गयी । वह चिल्लाई, कांपी और बनावटी लगन का प्रदर्शन करके संत के चरणों में गिर पड़ी तथा बोली :

> हे कृपानिधान, मुझ पर कृपा करो । आप ही मेरा सहारा हैं । मुझे अपनी शिष्या बनने की अनुमति दें ।

संत ने उसकी प्रार्थना मानकर उससे बातचीत की और सहज भक्ति से उसे भक्तिनी के रूप में उपवन में रहने की अनुमति दे दी । बिना इस पर संदेह किए उसने उस मोहिनी को भगवान की सच्ची भक्त समझ कर हमेशा अपने साथ रहने की स्वीकृति दे दी । उसने बगीचे की देखभाल करने में उसकी सहायता लेना भी स्वींकार कर लिया ।

यद्यपि देवदेवी संत को मोहित करने के लिए कृतसंकल्प थी, परन्तु वह अनजाने ही भक्ति के मार्ग पर चल पड़ी । वह अपने अहम् और अंहकार को दबा कर एक विनम्र भक्त की भांति रहने लगी और मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य को उसने अपना लक्ष्य बनाया ।

श्री रंगनाथ में अपार श्रद्धा रखने वाला विप्रनारायण ईश्वर के प्रति अनुराग के मार्ग से भटकने लगा और उसके मन में अपनी महिला संवाहिनी के प्रति सहानुभूति के भाव उमड़ने लगे ।

यह स्थिति एक तुफानी रात को अपनी चरम सीमा पर पहुंची । जब देवी बिल्कुल भीगकर, सर्दी से कांपती हुई एक शाख के नीचे छुप गयी । संत ने उसे देख लिया और उसकी मुसीबत पर तरस खाकर अपने सूखे वस्त्र उसे दिए । इस प्रकार उसने देवी के मन में अपने प्रति प्रेम-भाव जगाया । इस तरह से वह धूर्तता का शिकार हो गया ।

भक्तिनी के प्रति संत का मोह इतना बढ़ गया कि वह उससे एक क्षण के लिए भी दूर नहीं रह सकता था। इसी तरह कुछ दिन बीत गये।

जब देवी को विश्वास हो गया कि संत उस पर पूरी तरह आसक्त हो गया है तो उसने एक दिन उसे अपने घर आने का प्रलोभन दिया। उस मोहिनी के घर में संत खुशी से रहने लगा और अपने मन में बसे भगवान को भुला कर सांसारिक सुखों का का आनन्द लेने लगा। देव-देवी भी अपना पारिवारिक व्यवसाय भूल गयी। उसकी इस भूल से उसकी दुष्ट माता को क्रोध आया।

देवदेवी की मां अपनी बेटी के साथ उस संत का रहना सहन नहीं कर सकती थी और उसने उसे घर से बाहर निकाल देने का निर्णय कर लिया। वह शयन-कक्ष में गयी, ऋषि को घसीट कर बाहर लायी और उसे घर से निकाल कर दरवाजा बंद कर लिया। हक्का-बक्का, विप्रनारायण घर के बाहर दुखी होकर बैठा उस स्त्री के व्यवहार पर पश्चाताप कर रहा था। परंतु वह उस स्थान को नहीं छोड़ सका। आकर्षक देव-देवी के प्रेम ने उसे दीवाना बना दिया था। देवी उसके पास आयी और बोली कि इस जुदाई से वह भी दुखी है। संत ने उसकी भर्त्सना की और कहा कि उसे अपने जाल में फंसाने के बाद वह इतनी कठोर हो गयी है। देवी ने उसे बताया कि रात्रि को वह उसे उपवन में मिलेगी और इसके पश्चात वह सदा उसके साथ रहेगी। इससे पूर्व उसने अपनी बड़ी बहन के समक्ष स्वीकार किया था कि वह संत से प्रेम करती है। बड़ी बहन ने उसे अपनी शर्त से मुक्त कर दिया। मन में पश्चाताप लिए संत अपने उपवन में लौट आया और भगवान से क्षमा याचना की। इस प्रकार अनुतप्त होकर ईश्वर से प्रार्थना करने लगा और सांझ हो गयी।

यहां विष्णु-लोक का दृश्य सामने आता है जहां भगवान विष्णु अपनी पत्नी श्री लक्ष्मी के साथ विश्राम कर रहे थे। वे यकायक मुस्कराये। उनकी पत्नी ने अपने स्वामी से मुस्कराने का कारण पूछा। उन्होंने बताया कि उनका आराधक, जो निर्दोष है, पवित्र मार्ग से भटक गया है। वह एक मोहिनी के आकर्षण का शिकार होकर अपमानित हो रहा है। लक्ष्मी ने उनसे भक्त को और अधिक अपमान से बचाने की प्रार्थना की। भगवान को दया आयी और उन्होंने एक योजना बनायी। उन्होंने स्वयं उसे क्रियान्वित किया। एक युवा ब्राह्मण (ब्रह्मचारी) के रूप में वे गये और देवी का दरवाजा खटखटाया। उसकी माता ने क्रोध में आकर दरवाजा खोला और आगंतुक को कोसने लगी। परंतु जैसे ही आगंतुक ने उसे एक स्वर्ण पात्र दिया और संदेश दिया कि उसे संत ने भेजा है तो उसने उसका घर में स्वागत किया और आवभगत की। उसने कहा कि उसके स्वामी ने यह उपहार उसकी बेटी के लिए भेजा है। वृद्धा प्रसन्न

हुई और उसने अपने पहले के कठोर व्यवहार के लिए क्षमा मांगी और कहा कि वह मजाक था। उसने कहा कि वह अपने स्वामी को उसके घर लायेगी।

भगवान फिर बगीचे में गये और विप्रनारायण को देवदेवी के पास जाने के लिए कहा जो उसके विरह में तड़प रही थी। संत ने शुभ समाचार लाने वाले बालक को गले लगाया और कहा कि तुम दयालु भगवान श्री रंगा हो क्योंकि वही मुझे कष्टों से मुक्ति दिला सकते हैं। बालक संत को देवी के घर ले गया और स्वयं अपने बैकुण्ठ को लौट गया। संत ने उस सुंदरी के साथ रात व्यतीत की। पौ फटी और आकाश में सूर्य निकल आया।

श्री रंगनाथ मंदिर के पुजारी ने मंदिर के भंडार से जब स्वर्ण पात्र गुम पाया तो उसे बहुत आघात पहुंचा। उसने चौकीदारों पर चोरी का आरोप लगाया। जब वह उन पर दोष लगा रहा था तो देवदेवी की माता के घर की दासी, चंचलवाणी ने उन्हें बताया कि उसने स्वर्ण पात्र अपनी मालकिन के घर में गई रात को देखा था। मंदिर के मुख्य अधिकारी के आदेश पर चौकीदारों ने स्वर्णपात्र को प्राप्त कर लिया और देवी और संत को गिरफ्तार कर लिया। उनको न्यायधीश के सामने पेश किया गया।

चोल राजा के सामने मुकदमा चलाया गया। मंदिर गर्भ का स्वर्ण पात्र संत और देवी के तकिए के नीचे पाया गया था।

देवी ने न्यायालय को स्पष्ट बता दिया कि उसे संत से प्रेम हो गया था और वह उसके घर आया था। वह निर्धन था इसीलिए उसकी माता ने उसे घर से निकाल दिया था। गत रात उसने अपने एक शिष्य के द्वारा स्वर्ण पात्र भेजा जिसे उन्होंने नेकनीयत से रख लिया और संत को घर में आने दिया।

विप्रनारायण ने कहा कि वह सुंदर युवती के सौंदर्य के प्रति आकर्षित हो गया था और उसके प्रेमी के रूप में उसके साथ रहा। उसे बाहर निकाल दिया गया था। जब वह युवती के विरह में तड़प रहा था तो एक बालक आया और उसे युवती के घर ले गया और इससे अधिक वह कुछ नहीं जानता।

यह लक्ष्य सुन कर देवी को क्रोध आ गया और उसने जिरह करते हुए पूछा कि उसने स्वर्ण पात्र के साथ बालक को दूत के रूप में भेजा था या नहीं? जब यह बहस जारी थी, न्यायाधीश ने मुकदमा समाप्त कर दिया और संत को चोरी करने का दोषी ठहराया।

उसी क्षण भगवान विष्णु स्वयं राजकीय न्यायालय में आये। उन्होंने कहा कि संत उनका बच्चा है और स्वर्ण पात्र पर उसका पैतृक अधिकार है। वह चोरी करने

का दोषी नहीं है। राजा और दरबारियों ने भगवान की वंदना की और संत का सम्मान किया। इसके पश्चात भगवान ओझल हो गये। विप्रनारायण को सम्मानित किया गया और 'भक्तंध्री रेणु', अर्थात् भक्तों की चरण रज के पद से अलंकृत किया गया।

संगीत नाटक सब के लिए मंगल कामना के साथ समाप्त होता है।

परिशिष्ट-दो

लोक गीतों के कुछ उदाहरण

यह गीत दिखाता है कि स्त्री हृदय से हमेशा अपने पति के सुख की कामना करती है)।

1

ओ नीलम्मा, तुम्हारे पति ने तुम्हें छोड़ दिया है।
कोई बात नहीं अगर उसने मुझे छोड़ दिया,
इतना ही काफी है कि वह मेरे आस-पास है,
कोई बात नहीं अगर उसने मुझे छोड़ दिया,
इतना ही काफी है वह जहां भी हो ठीक-ठीक हो,
इतना ही काफी है कि मेरे पैरों में बिछुए पड़े रहें,
इतना ही काफी है कि चूड़ियां मेरे हाथों में पड़ी रहें,
जब तक मेरे माथे का कुंकुम-सिंदूर सुरक्षित है
मेरे लिए किसी से डरने की कोई बात नहीं है।

2

यह गीत चक्की पीसते हुए गाया जाता है। यहां दिखाया गया है कि पति द्वारा त्यक्त स्त्री की आंखों से आंसुओं की नदी बहती है, विशेष कर उस समय जब वह चक्की चलाती है, क्योंकि उस समय काम के कष्ट के कारण पति की याद उसे बहुत ज्यादा सताती है। पहली दो पंक्तियां लड़के द्वारा मां से पूछे गये प्रश्न के रूप में हैं। अगली दो पंक्तियों में मां का उत्तर है। पांचवी और छठी पंक्तियां बहू के प्रश्न के रूप में हैं। सातवीं और आठवीं पंक्ति में सास का उत्तर है। शेष पंक्तियों में कहा गया है कि इस धरती पर परित्यक्त स्त्री के आंसुओं से बाढ़ आ गयी है। गीत कठिनता से रुक-रुक कर गाया जाता है)

न तो वर्षा हुई थी, न बाढ़ आयी थी
ओ मां, फिर हमारे दरवाजे के पास

इतना पानी कैसे है ?
ओ बेटे, तुम कल पड़ोसी के घर जा कर सोये थे
यह तुम्हारी पत्नी के आंसुओं की बाढ़ है ।

ओ मेरी सासु जी, मेरी रानी सासु जी
तुम्हारे बेटे ने, तुम्हारे समझदार बेटे ने क्या कहा
ओ मेरी सासु जी ?

ओ मेरी बहू, मेरी बहू
मेरी प्यारी छोटी बहू
मेरा बेटा, समझदार बेटा कहता है
तुम्हारे साथ मेरा कोई संबंध नहीं है ।

यदि वह मुझे छोड़ता है, तो मैं उसके साथ क्यों रहूं ?
जब तक जेठ जी मेरी तारीफ करें-
मेरी ननदें मुझे बहन कह कर बुलाएं,
मेरी सास, मेरे ससुर मुझे पसंद करें,
मेरे देवर मुझे भाभी कह कर बुलाएं,
यदि इस धरती पर रहने वाले लाखों
बच्चे मुझे मां कह कर पुकारते रहें
तब तक मुझे कोई दुख नहीं होगा

3

बेटे का भेद मां ही जानती है
जंगल में रहने वाला आदमी कैसे जानेगा ?

सर्प-गीत के जादू को नाग-ही समझता है,
जोहड़ की जोंक उसे क्या समझेगी ?

जंगल की सुंदरता बुलबुल ही जानती है,
झाड़ियों का कौवा उसे क्या जानेगा ?

गधा चंदन की सुगंध को क्या पहचानेगा ?
चम्मच भोजन का स्वाद क्या जानेगा, ?
उसका स्वाद तो जीभ ही जान सकती है।

4

(चंद्रमा और प्रेमियों का संबंध हर मौसम और हर काल में रहता है। चंद्रमा प्रेमियों का मित्र है जो उन्हें प्रसन्न देखकर मुस्कराता है और उन्हें निराश देख कर क्षीण होता है। चंद्रमा को संबोधित निम्नलिखित तेलुगु गीत एक विशिष्ट उदाहरण है। इसमें एक युवती की करुण गाथा है)

ओ चंदा, प्यारे ओ चंदा
वह मुझे प्यार करता था
मेरे लिए तड़पता था
ओ चंदा, ओ प्यारे चंदा···

उसने मुझे प्यार से जीत लिया
और मैं उससे प्यार करने लगी
तब भोर का समय था
और मैंने उसे अपना प्रियतम कहा
ओ चंदा, ओ प्यारे चंदा···

उसने मेरी तरफ टकटकी बांध कर देखा
लेकिन कुछ उत्तर नहीं दिया
वह एक शब्द भी नहीं बोला
बड़ी अजीब बात थी
ओ चंदा, ओ प्यारे चंदा···

वह मुझ पर जान देता था

मेरे साथ-साथ रहता था
कल तक ऐसा ही था
ओ चंदा, ओ प्यारे चंदा···

उसने मुझे कई बार मुस्करा कर देखा
और कई कीमती उपहार भी दिये
वह प्रतीक्षा करता रहा, करता रहा
जब तक मैं उससे प्यार नहीं करने लगी।
उसकी हल्की गुलाबी धोती में कस्तुरी की गंध है
उसकी मनमोहक मूरत मेरे दिल में बसी है
ओ चंदा, ओ प्यारे चंदा···

उसकी बगल में तलवार है
जिसकी मूठ पर पन्ने जड़े हैं
यह बहुत तेज, बहुत तेज है
ओ चंदा, ओ प्यारे चंदा···

मैं चाहता हूं कि वह तलवार मेरे दिल को चीर दे
और तब मैं आराम और शांति से सो जाऊं
ओ चंदा···

5

(निम्नलिखित गीत कुएं अथवा नदी से पानी खींचते समय या नहरों से खेतों की तरफ पानी को मोड़ने समय गाया जाता है। किसान दिन-रात मेहनत करके फसल उगाता है लेकिन उसका पुरस्कार बहुत मामूली होता है। वह दूसरों को खिलाता है लेकिन खुद भूखा रहता है। शहर के अफसर और छोटे-मोटे कर्मचारी उसे परेशान करते हैं। चूंकि वह उनकी प्रत्यक्ष आलोचना नहीं कर सकता, वह निम्नलिखित गीत में अन्योक्ति से उनका वर्णन करता है।)

मैं नदी-नालों से पानी खींचता हूं
और हजारों बोरे धान उगाता हूं

लेकिन कभी-कभार मुझे ही भोजन का ग्रास मिलता है।

हाथ-पांव धोने के बाद,
जब मैं किनारे पर बैठा, तो कौवे ने मेरे सिर पर चोट मारी,
कौवे के बच्चे ने भी मेरे सिर पर चोट मारी।

लड़ाई से हार कर जब मैं आग के पास बैठा
मेरी बेटी ने ही मेरा अपमान किया
और बेटी की मां ने भी मेरा अपमान किया।

भोर से पहले ही उठकर जब मैं
बाल्टी सिर पर रख कर चला
मैं सिर के बल नीचे गिर गया
और मेरी हड्डियां टूट गईं।

ओ, मैं कितनी बुरी जिंदगी जी रहा हूं,
मैं पहले क्यों नहीं मर गया ?

परिशिष्ट-तीन

लोक कथाएं

जुड़वां भाइयों की कहानी

कई वर्षों की प्रतीक्षा के बाद राजा-रानी के दो जुड़वां बच्चे हुए जिनका नाम रामुड्डु और लक्षमणुड्डु रखा गया। जब वे बड़े हुए और सारे कला-कौशल सीख चुके तो राजा ने राज्य की बागडोर बड़े लड़के को सौंपने का निश्चय किया। जुड़वां भाई इसके लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा कि वे और ज्ञान की खोज में एक साल राज्य में घूमेंगे और उसके बाद राजतिलक का निर्णय करेंगे। राजा ने उनका प्रस्ताव तुरंत मान लिया।

दोनों भाइयों ने एक-एक तलवार और एक घोड़ा लिया और निकट के जंगल की ओर चल दिये। एक स्थान पर उन्होंने शेरनी देखी जिसने अभी-अभी दो बच्चों को जन्म दिया था। वह बहुत भूखी थी और भोजन के लिए तरस रही थी। राजकुमारों ने उसे मांस खिलाया। इस पर शेरनी इतनी प्रसन्न हुई कि उसने अपने दोनों बच्चों को राजकुमारों में बांट दिया। जब वे आगे गये तो उन्हें एक रीछनी मिली। उसने भी उसी समय दो बच्चों को जन्म दिया था। रीछनी ने भी अपने दोनों बच्चे राजकुमारों को उनके सद्भाव के बदले में दे दिये।

राजकुमार शेर और रीछ के बच्चों को साथ लेकर जंगल में बहुत दूर तक चलते रहे। अंत में वे एक बड़ के पेड़ के पास पहुंचे। यह पेड़ बड़ा विचित्र था। इसकी केवल दो डालियां थीं। एक उत्तर की ओर और दूसरी दक्षिण की ओर फैली हुई थी। शाखें बहुत मोटी और बहुत ऊंचे आसमान में उठी हुई थीं। राजकुमारों ने निश्चय किया कि वे अलग-अलग डाल पर चढ़ेंगे और एक साल बाद पेड़ के नीचे उतर आयेंगे। उन्होंने पेड़ के नीचे एक पौधा लगाया और यह तय किया कि यदि यह पौधा सूख गया या मुरझा गया तो जो भी पहले पेड़ के नीचे आयेगा, यह समझ लेगा कि दूसरा भाई या तो मर गया है या किसी मुसीबत में है यदि पौधा ठीक होगा तो उसका अर्थ होगा कि दूसरा भाई भी ठीक-ठाक है और वापस आने वाला है।

रामडु दक्षिण की डाल पर चढ़ा। यह बहुत चौड़ी थी और वह उस पर वैसे ही आसानी से चल सकता था जैसे जमीन पर चला जाता है। बहुत दूर चलने के बाद वह एक शहर में आ पहुंचा। उसने अपने दोनों साथियों को हाथ में लिया और सड़कों पर चलने लगा। आश्चर्य की बात यह थी कि सड़कें सुनसाम थीं। वह एक घर में जा पहुंचा और सड़कों के सुनसान होने का कारण पूछा।

उसे बताया गया कि एक दैत्य ने शहर में तूफान मचाया है और उसे खुश करने के लिए राजा एक आदमी रोज उसके भोजन के लिए भेजता था। उस दिन राजा की लड़की की बारी थी। चूंकि राजकुमारी को दैत्य खा जाएगा इसलिए सारा शहर मातम मना रहा है। रामुडु ने यह सब सुना और शाम को खुद उस गुफा की तरफ चला गया जहां दैत्य सोया हुआ था। उसने एक प्रहार से उसे मार डाला और उसकी जीभ तथा नाखूनों को काटकर वीरता की निशानी के तौर पर अपने पास रख लिया। जब राजकुमारी वहां आयी तो उसने उसे समझा-बुझा कर वापस भेज दिया।

एक धोबी ने यह सारा दृश्य देखा था। उसने जाकर राजा को बताया कि उसने दैत्य को मार डाला है। राजा इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसे अपना आधा राज्य देने और राजकुमारी के साथ उसका विवाह करने का प्रस्ताव रखा। लेकिन राजकुमारी ने कहा कि जिस आदमी ने दैत्य को मारा है, वह कोई और है। जब जीभ और नाखून रामुडु के पास पाए गए गये तो लोगों को विश्वास हो गया कि दैत्य को मारने वाला यही राजकुमार है और उसके साथ राजकुमारी को ब्याह दिया गया। धोबी को चाबुक से पीटा गया और उसे जलते चूल्हे में फेंक दिया गया।

एक दिन रामुडु की शिकार खेलने की इच्छा हुई। इसके लिए राजा ने अपनी सहमति दे दी लेकिन साथ ही यह भी कहा कि वह उत्तर की तरफ न जाए। उसे एक जंगली सूअरनी दिखाई दी और उसने उसका पीछा किया। शेर और रीछ के बच्चे भी उसके साथ थे। सूअरनी अचानक लुप्त हो गयी। उसे कंकड़-पत्थर और सूखे पेड़ के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं दिया। पेड़ की चोटी पर एक बुढ़िया बैठी थी। रामुडु ने बुढ़िया से पूछा कि वह कंकड़ों-पत्थरों के बीच इस इस तरह अकेली क्यों बैठी हुई है। उसने कहा कि उसे ठंड लग रही है और उसने रामुडु को आग जलाने के लिए कहा। जब उसने आग जला दी तो बुढ़िया ने कहा कि दोनों पशुओं को छड़ी से धीरे-धीरे मार कर अपने पास ले आओ। बुढ़िया के प्रति दया दिखाते हुए रामुडु ने वैसा ही किया। किंतु जैसे ही उसने छड़ी से पशुओं को छुआ वे पत्थर बन गए। वह क्रोध और आश्चर्य से डूबा खड़ा रहा। इस बीच बुढ़िया ने रामुडु को छड़ी से छुआ और वह भी पत्थर बन गया।

जब रामुडु पत्थर बन गया तो बड़ के पेड़ के नीचे लगाया गया तुलसी का पौधा मुरझा गया। जुड़वां भाइयों को बिछड़े एक साल हो गया था और अब लक्ष्मणुडु पेड़ के नीचे वापस लौट कर आया। वह उत्तरी डाल पर चढ़ कर उसी शहर में आ पहुंचा। शहर के लोग राजा के दामाद के खो जाने से दुखी थे। जब उन्होंने लक्ष्मणुडु को देखा तो उन्होंने उसे रामुडु मान लिया तथा उसे लेकर महल में आये। वहां राजकुमारी उसके पांव छूने के लिए आयी और लक्ष्मणुडु समझ गया कि यह उसके भाई की पत्नी है। लेकिन जब उसने उसे बताया कि वह उसका पति रामुडु नहीं है तो राजकुमारी को विश्वास नहीं हुआ। उसने बहाना किया कि उसे एक वचन पूरा करना है और वह उत्तर की दिशा में चल पड़ा।

लक्ष्मणुडु के साथ भी वही गुजरी जो उसके भाई के साथ गुजरी थी। बुढ़िया ने लक्ष्मणुडु को कहा कि वह पशुओं को छड़ी से छुए। लेकिन उसने बुढ़िया को धमकाया और उसे पेड़ के नीचे आने तथा सभी पत्थरों को छूने पर विवश किया। सभी पत्थर अपने-अपने असली रूप में आ गये। इसके बाद लक्ष्मणुडु ने बुढ़िया को छड़ी से छूकर उसे पत्थर बना दिया।

मूर्ख चोर

एक बार पूर्णिमा की रात एक मूर्ख चोर चोरी करने निकला। वह एक बड़े घर के अंदर घुसा। अंदर घना अंधेरा था। कमरे के बीच एक जगह चांदनी का एक धब्बा था जो रोशनदान से चांदनी आने के कारण बना था। चोर के कंधों ने ऊपर सफेद चादर लपेट रखी थी। उसने उसे चांदनी से आलोकित स्थान पर बिछा दिया यह सोच कर कि वह घर की सारी चीजें इसमें बांध कर आसानी से ले जाएगा। इसके बाद वह भंडार में अपनी पसद की चीजें लेने घुसा। मकान मालिक, जो कमरे के एक कोने में खाट पर लेटा हुआ था, यह सब देख रहा था।

जब चोर भंडार घर के अंदर चला गया तो मकान मालिक जल्दी से उस स्थान पर पहुंचा जहां चोर ने कपड़ा बिछाया था। उसने कपड़ा उठाया और चुपचाप अपने बिस्तर पर आ लेटा। कपड़े को अपने सिरहाने के नीचे दबा कर वह चोर का तमाशा देखने लगा। इस बीच चोर भंडार से कुछ चीजें लेकर लौटा और उसने उन्हें चांदनी से प्रकाशित फर्श पर रख दिया, यह सोच कर कि वह बिछाए हुए कपड़े पर चीजें रख रहा है।

इसी तरह सारे घर की तलाशी ली और हाथ लगी चीजों का ढेर वहां लगा दिया। जब उसे यकीन हो गया कि अब चुराने लायक कुछ नहीं बचा है, तो वह उस ढेर को

बांधने लगा। कपड़े के चारों किनारों को इकट्ठा करने के लिए वह फर्श को टटोलने लगा। लेकिन उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कपड़ा वहां नहीं है और उसने चीजों का ढेर जमीन पर लगाया है। उसका दिमाग चकरा गया। मकान मालिक ने, जो सारा तमाशा देख रहा था, जान-बूझ कर कराहने की आवाज दी। चोर घबरा गया। उसने सोचा कि कोई आदमी उसे देख रहा है और वह सारा सामान वहीं छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। मालिक उठा। उसने चोर को भागते देख कर ताना कसा, "अरे साले भाई, जो कपड़ा तुम मेरे लिए यहां छोड़े जा रहे हो, वह मेरे लिए बहुत उपयोगी है। मैं इसे पगड़ी की तरह पहन सकता हूं। लेकिन भाई अगली बार आओ तो अपनी बहन के लिए भी कुछ लेते आना।"

इस प्रकार अपनी मूर्खता के कारण उस चोर को कुछ हाथ नहीं लगा। उसे अपनी चादर भी खोनी पड़ी और अपमान भी सहना पड़ा।

परिशिष्ट-चार

कहावतें, सुभाषित और उपमाएं

1. खूंटा चिल्लाए, गाय-बछड़ा चुप ।
2. खानदान का नाम कस्तूरी लेकिन उसके कारनामें दुर्गन्धपूर्ण ।
3. कुत्ते को कहीं मारो, चलेगा लंगड़ाकर ।
4. बैल धूप की ओर भागता है और भैंस छांव की तरफ :
5. बैल की लात से डरकर घोड़े के पीछे छिपना ।
6. कुत्ते का भौंकना हाथी पर ।
7. मरा या जिंदा हाथी ऊंचे दाम का ।
8. गिरे हाथी को हाथी ही उठाता है ।
9. सांप को काटने दो, तो मेंढक नाराज, न काटने दो तो सांप नाराज ।
10. बुरा समय आने पर छड़ी भी सांप बन कर काटती है ।
11. काशी यात्रा से कुत्ता गाय नहीं बन जाता ।
12. कुत्ते को सिंहासन पर बिठा दो तब भी हड्डी देखकर दौड़ेगा ।
13. गंगा-स्नान से कौआ हंस नहीं बन जाता ।
14. अगर तुम कुत्ते को खिलाकर घोड़ा बनाओगे तो भौंकने का काम तुम्हें खुद करना पड़ेगा ।
15. घोड़ा अंधा हो, खायेगा तो उतना ही ।
16. भेड़ कसाई पर विश्वास कर लेती है पर संन्यासी पर नहीं ।
17. मरे सांप को मारना वीरता हो तो, सभी वीर बन जायेंगे ।
18. चींटियों के चलने से पत्थर नहीं घिसते ।
19. भेड़िये का बिना दाम भेड़ की रखवाली का जिम्मा लेना ।
20. चोरी के छः महीने बाद कुत्तों का भौंकना ।
21. सभी ढोर चोरी हो जाएं तो बांझ भैंस भी देवी की तरह पूजी जाती है ।
22. भीख नहीं देनी तो न दो पर कुत्ते को बांधे रखो ।

23. मोर के आंसू शिकारी के मन में दया नहीं जगाते।
24. भीड़ में आया सांप बचने की कोशिश करता है।
25. सांप को दूध पिलाओ वह काटने से बाज नहीं आयेगा।
26. बिल्ली चाहती है मालिक अंधा हो जाये, कुत्ता चाहता है मालिक के और बच्चे हों।
27. तीर्थ नहाते समय मगर का शिकार होना।
28. देर से उगने वाले सींग जन्म के साथ उगने वाले कानों से अधिक पैने होते हैं।
29. कोई टुकड़े फेंकने वाला हो तो कौवे बहुत आ जायेंगे।
30. छुटपन में नहीं सुधरे तो बुढ़ापे में क्या सुधरोगे।
31. जहां पेड़ नहीं होते वहां एरंड ही सब से बड़ा पेड़ होता है।
32. चंद्रमा की दक्षिणी नोक उभरे तो धान की कीमत अच्छी, उत्तरी नोक उभरे तो नमक की कीमत अच्छी।
33. पंचांग खोने से तारे नहीं खो जाते।
34. सड़ी काली मिर्च चरी से अच्छी है।
35. दिन की वर्षा और सांझ के मेहमान से पीछा छुड़ाना मुश्किल होता है।
36. सुबह की बरसात और सुबह का मेहमान ज्यादा देर नहीं टिकते।
37. आंधी का डर पेड़ों को होता है, जमीन की घास को नहीं।
38. प्रणाली के बिना शिक्षा और निगरानी के बिना खेती बेकार होती है।
39. खेती करने वाला ब्राह्मण और विद्या पढ़ने वाला कापु (किसान) दोनों का अंत में नाश होता है।
40. माघ महीने की वर्षा पतिहीन स्त्री जैसी होती है।
41. मृगशिरा महीने में बात करने की भी फुर्सत नहीं होती।
42. 'मूल' में बोया गया चना हर तीन फूल के छः दाने देता है।
43. मृगशिरा की वर्षा का अर्थ है जल्दी फसल।
44. खाली बादल ज्यादा गरजते हैं।
45. वर्षा के आने और जिंदगी के जाने का कोई पूर्वानुमान नहीं लगा सकता।
46. वर्षा होगी तो धान ज्यादा होगा, नहीं होगी तो चरी ज्यादा होगी।
47. शेर पीछा कर रहा हो तब भी राजमहल में नहीं घुसना चाहिए।
48. सभी शासक बनना चाहेंगे तो शासन किस पर होगा।
49. राजा का राज तो कुछ गांवों में होता है लेकिन भिखारी सारी दुनिया में भीख मांग सकता है।

50. शासक अपनी दौलत पत्थरों पर खर्च करते हैं।
51. जहर सांप के दांतों में रहता है लेकिन शासक की आंखों में।
52. शासक पर रीझी आंखें पति पर नहीं रीझतीं।
53. ओछे आदमी की पत्नी बनने की अपेक्षा शक्तिशाली की गुलामी अच्छी।
54. अपनी पत्नी को खिलाना किसी और को संतोष देना नहीं है।
55. भिखारी पति शासक-पुत्र से अच्छा होता है।
56. जिस गृहणी ने भरपेट खा लिया हो वह पति की भूख नहीं जान सकती।
57. पढ़ी-लिखी औरत और खाना पकाना जानने वाले मर्द से पार पाना कठिन होता है।
58. स्त्री साध्वी हो तो वह वेश्या के घर भी रह सकती है।
59. जिस स्त्री से प्यार करो वह रंभा और जिस जोहड़ में स्नान करो वह गंगा।
60. रात वेश्या के बिताना और सुबह तड़के गंगा-स्नान करना।
61. औरत समय से पहले प्रसूति हो जाए तो कोई हर्ज नहीं बशर्ते कि लड़का पैदा हो।
62. अधेड़ उम्र में सभी औरतें पतिव्रता होती हैं।
63. मां-बाप मरे बच्चे को रोते हैं और कब्र खोदने वाले पैसे के लिए।
64. पत्नी की पूजा से पति का स्वभाव बनता है और उसके शील से बच्चों का।
65. उपवास के दिन सुहागरात की याद करना।
66. दाई से बात छिपाना।
67. पति द्वारा जोड़ी गयी औरत को मौत भी नहीं छूती।
68. पतुरिया अपने बुरे काम नहीं छोड़ती भले ही उसका पति कामदेव हो।
69. खुले आसमान का सूर्य और पति द्वारा छोड़ी गयी स्त्री असह्य होते हैं।
70. विधवा द्वारा पाला गया बेटा बिना नकेल का सांड होता है।
71. कुत्ते को बहुत प्यार करो तो मुंह काटता है; औरत को बहुत प्यार दो तो कंधे पर सवार होती है।
72. पति की मृत्यु होने के बाद पत्नी अधिक समझदार हो जाती है।
73. पुरुष बाहर न जाने पर बिगड़ता है, स्त्री बाहर जाने पर बिगड़ती है।
74. राजा का अनुमोदन हो तो शब्द कानून हो जाता है, पति का अनुमोदन हो तो स्त्री रंभा बन जाती है।
75. जिस स्त्री ने हरजाईपन सीख लिया वह झूठ भी बोल सकती है।
76. दुल्हिन को उसके परिवार से और उसकी नस्ल को रंग से जानो।

77. विधवा से आशीर्वाद मांगा तो बोली "मेरी तरह सौ साल जियो।"
78. सागर को तैरना आसान है लेकिन घर में शांति बनाये रखना मुश्किल है।
79. तुम्हारी बहन तो तुम्हारी है लेकिन क्या बहनोई भी तुम्हारा होता।
80. सास की मृत्यु पर बहू पूरे छः महीने बाद रोती है।
81. गरीब घर में पहली बहू होना, धनी परिवार में आखिरी बहू होने से ज्यादा अच्छा है।
82. यदि बहू काली हो तो इसका यह अर्थ नहीं कि सारे बच्चे काले होंगे।
83. जब बहू घर में आ रही हो तब भी सास को गंगा स्नान के लिए बाहर जाना होता है।
84. जो घर तुम्हें खिलाये उसकी नींव मत खोदो।
85. सब कुछ जानने वाला और कुछ भी न जानने वाला व्यक्ति इस दुनिया में कोई नहीं होता।
86. देने वाला हो तो लेने के लिए मुर्दे भी जाग उठते हैं।
87. घर में जो सफल नहीं हुआ वह बाहर कभी सफल नहीं हो सकता।
88. काले ब्राह्मण और गोरे चमार पर विश्वास मत करो।
89. आदमी अपने खोदे गड्ढे में खुद ही गिरता है।
90. तुम्हें बिगाड़ने वाली तुम्हारी जीभ है।
91. फेंकते समय भी तुम गिनते हो।
91. यदि तुम अंधी से शादी करोगे क्योंकि वह मुफ्त में मिली है, तो वह महीने में तीस बर्तन तोड़ेगी।
93. अगर तुम्हें सपने में ही दूध पीना हो तो बर्तन चाहे सोने का हो या कांसे का, क्या फर्क पड़ेगा।
94. अध्यापक खड़ा-खड़ा पियेगा तो शिष्य दौड़ते-दौड़ते पियेंगे।
95. जो आदमी सारे मंदिर को खा सकता है उसे मूर्तियों की क्या चिन्ता।
96. बांझ औरत क्या जाने प्रसूति-पीड़ा।
97. रेशमी धागों से झाड़ू बनाना।
98. जूता पहने या कर्ज में डूबे आदमी के पीछे मत जाओ।
99. कोई देखभाल करने वाला हो तो बीमार पड़ने जैसा कोई सुख नहीं है।
100. ऐसा न्याय मत मांगो जो तुम्हारे लिए नुकसानदेह हो और ऐसा धंधा मत करो जो पूंजी को खा जाये।
101. शाप से कोई नहीं मरता और आर्शीवाद से कोई नहीं जीता।

102. खाने से पहले स्वाद का पता नहीं चलता और पानी में घुसने से पहले गहराई का पता नहीं चलता।
103. वरदान भगवान देता है मंदिर का पुजारी नहीं।
104. सभी चोर बुरे नहीं होते लेकिन सभी बुरे आदमी चोर होते हैं।
105. कमजोर जबान नौ तरह की बातें करती है।
106. रोज मरने को कौन रोएगा ?
107. सोने वाले को जगाया जा सकता है लेकिन जो झूठ-मूठ सोया हो उसे कौन जगायेगा ?
108. दान में मिली चीज का वजन कम होने की शिकायत करना।
109. रिश्तेदारों की परवाह और मित्रों की उपेक्षा मत करो।
110. सामूहिक भोज में सब से पहले और बेगार में सबसे अंत में जाओ।
111. इसलिए कि कोई मांस खाता है, वह हड्डियों की माला नहीं पहन लेता।
112. जीभ पर काबू हो तो किसी से डरने की जरूरत नहीं।
113. लाखों तारे मिल कर भी चंद्रमा नहीं बना सकते।

परिशिष्ट-पांच

पहेलियां

1. बिना पूंछ का पंछी सैकड़ों मील आये ।

(पत्र)

2. न चटाई समेटी जाये, न गोटियां गिनी जायें ।

(आकाश और तारे)

3. मुट्ठी के बराबर चिड़िया और उसकी दो फैले हाथों जितनी पूंछ ।

(टेप)

4. लोहे का तना, सोने के फूल, चांदी जैसे सफेद फल ।

(बबूल पेड़)

5. मेरे दादा दो बैल लाये, एक खड़ा रहता है दूसरा घूमता है ।

(चक्की)

6. हनुमानकोंडा के तालाब के पांच खम्भे हैं । तुम उन्हें हिला सकते हो पर उखाड़ नहीं सकते ।

(हाथ)

7. बिना पानी का कुंआ जहां वेश्याएं नाचें ।

(कड़ाई में भुनता मक्का)

8. सिरे को दबाओ मुंह पर चाटो ।

(आम)

9. सफेद मिट्टी काला बीज, हाथ से बोओ, मुंह से काटो।

(कागज पत्र लिखना और पढ़ना)

10. काले तालाब में लाल कमल।

(बत्ती)

11. सारे शरीर पर आंखें हैं लेकिन वह इंद्र नहीं, वह आदमी की मदद के बिना चल नहीं सकता, खुद बेजान है लेकिन बहुतों की जान लेता है।

(मछुए का जाल)

12. मोतियों भरी पिटारी जिस पर ताला लगा है।

(अनार)

13. यहां देखो, वह लोहे की तरह है
तुम इसके पास सरक कर जाओ और देखो वह सोने की तरह चमकता है,
तुम इसे ताले में बंद कर दो तो इसके हजारों स्वाद हैं।

(ताड़ फल)

14. यह जंगल में पैदा हुआ, वहां बढ़ा
तब यह हमारे घर आया और बरतन में घुस गया
यहां ऊपर-नीचे घूमा और उसने कुछ निकाला
उसने अपने लिए कुछ नहीं रखा, सब कुछ मुझे दे दिया।

(लकड़ी की मथनी)

15. उसकी तीन आंखें हैं लेकिन वह शिव नहीं है
वह पेड़ों के ऊपर रहता है, लेकिन पक्षी नहीं है,
यह पानी से भरा है लेकिन यह बरतन नहीं है।

(नारियल)

16. किवाड़ जो हमेशा टकराते हैं पर आवाज नहीं करते।

(पलकें)

17. चार चोर खंभे पर बीच में गहनों की पिटारी।

(लौंग)

18. छोटी सी जान अनगिनत पोशाकें।

(प्याज)

19. लाखों काले चनों के बीच एक पत्थर।

(चंद्रमा और तारे)

20. छड़ी जो धरती से आसमान तक है।

(वर्षा)

21. न हम मां की साड़ी लपेट सकते हैं
न पिता के धन को गिन सकते हैं।

(आकाश और तारे)

ग्रंथ सूची

1. सेंसस आफ इंडिया, 1961 खंड दो भाग सात-बी
   'मेले और त्योहार आंध्र प्रदेश'
   सम्पादक : ए० चंद्रशेखर
2. 'तेलुगु जनपदगेय साहित्यमु'—डा० बी० रामराजु
3. 'नाट्यकला' विशेषांक फरवरी-मार्च, 1970
   आंध्र प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, हैदराबाद
4. 'नृत्तरत्नावली'—जय सेनापति
5. 'गाथा सप्तशती'—राजा हाला
6. 'तेलुगु इन्साइक्लोपीडिया' खंड दो, तेलुगु भाषा समिति
7. 'स्काटिश एंड इंगलिश बैलड्स'—एफ-जे-चाइल्ड
8. 'दि रेड्डीज आफ दि बिसन हिल्स' फूरर हैमनडोर्फ
9. 'कुमार संभव' राजा नान्नेचोडा
10. 'वसवपुरनमु'—पाल्कुरिक सोमनाथ
11. 'पंडिताराध्य चरित्रमु'—पाल्कुरिकि सोमनाथ
12. 'अभिलषितार्थ चिंतामणि'—राजा चालूक्य सोमेश्वर
13. दि डांस इन इंडिया'—फोनियन बाऊर्स
14. 'नाट्यशास्त्र' भरत
15. 'पासिडि पालुकुलु'—नेद्रनूरिगंगाधरन ।

जुपिटर आफसेट प्रैस, 10/3 बी, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित।